॥ वृत्तालये स भगवान् जयतीह साक्षात् ॥

वडतालधाम द्विशताब्दी ग्रंथमाला-२

श्री हरिगीता

: अनुवादक :

शास्त्री भक्तिकिशोरदास

: प्रसिद्धकर्ता :

श्री स्वामिनारायण मंदिर, वड़तालधाम

શ્રી રણછોડરાયજી, શ્રી લક્ષ્મીનારાયણ દેવ - વડતાલધામ

પ.પૂ.ધ.ધુ.૧૦૦૮ આચાર્યશ્રી રાકેશપ્રસાદજી મહારાજશ્રી

॥ वृत्तालये स भगवान जयतीह साक्षात् ॥

वडतालधाम द्विशताब्दी ग्रंथमाला-२

श्रीहरिगीता

दक्षिण विभाग वड़ताल श्रीलक्ष्मीनारायण देव गद्दी के
सनातन धर्ममार्तण्ड प.पू.ध.धु. १००८ आचार्य
श्रीराकेशप्रसादजी महाराज की आज्ञा से

: अनुवादक :

शास्त्री भक्तिकिशोरदास

: आशीर्वाद :

गुरु : शास्त्री स्वामी धर्मप्रसाददासजी

:: प्रसिद्धकर्ता ::

वड़ताल मेनेजींग ट्रस्टी बोर्ड की ओर से
मुख्य कोठारी डॉ. शास्त्री संतवल्लभदासजी स्वामी
(Ph.D., D.Litt)

वडतालधाम द्विशताब्दी ग्रंथमाला-२

ग्रंथ : श्रीहरिगीता (हिन्दी अनुवाद)

प्रकाशक तथा सर्व हक्क :
© No one can use any part of this translated book in any form without writter permission.
श्री स्वामिनारायण मन्दिर, संस्थान-वड़ताल
मु.पो. वड़ताल, तहसील-नड़ीयाद, जनपद-खेड़ा
पीन : ३८७३७५ (गुजरात)

प्रकाशन तिथि : प.पू.ध.धु. १००८ आचार्यश्री राकेशप्रसादजी महाराज गद्दी पदारुढ विंशति वंदना (संवत्-२०७९, ई.स.२०२३)

आवृत्ति : प्रथम

प्रत : १०००

लागत मूल्य : ₹ ३८/-

सौजन्य की ओर से बिक्री मूल्य : ₹ ३५/-

प्राप्तस्थान :
श्री स्वामिनारायण मन्दिर, वड़ताल-३८७३७५.
फोन : ०२६८-२५८९७२८/७२६
श्री स्वामिनारायण गुरुकुल - सावदा (महाराष्ट्र)
मो. ९४०३५७१६०९

मुद्रक : श्रीजी आर्ट, अहमदावाद
फोन : (०७९) २६४४१५२२, (मो.) ७६०००२६६८६, ९८७९६०६६८६
E-mail : shreejiart@gmail.com, **Web :** www.shreejiarts.org

अनुवादकीय...

आज के समय में सभी प्रकार की भौतिक सुख-सुविधाएँ होने पर भी मनुष्य खालीपन और अकेलापन के रोग से ग्रस्त है । जिसे वह अपने जीवन से हमेशा के लिए दूर करना चाहता है । ऐसे समय में यदि मनुष्य को अपने जीवन में सभी नकारात्मक विचारों और भावनाओं को पूरी तरह नष्ट करना है तथा अपने सकारात्मक विचारों एवं भावनाओं से भरकर सफलता प्राप्त करनी है तो जीवन में उसके लिए अध्यात्म-ग्रंथों का पठन-पाठन करना अनिवार्य है ।

प्रत्येक मनुष्य के जीवन में धर्म से जुड़ी ग्रंथ संपदा उसका ऐहिक और पारलौकिक दोनों मार्ग प्रशस्त करती है। उसके जीवन-मार्ग में आनेवाले हर एक पड़ाव चाहे वह मानसिक हो, शारीरिक हो, सामाजिक हो, व्यापारिक हो अथवा सुख-दु:ख के हो, इत्यादि में केवल "**धर्मग्रंथ**" ही उसके लिए मार्गदर्शन बनकर शांति प्रदान कर सकते हैं ।

इसी विचारों को लेकर हमारे आर्षद्रष्टा ऋषिमुनियों ने मानव समाज के कल्याण हेतु अनेकों ग्रंथों के माध्यम से हमें भगवान् के विषय में उपयोगी ज्ञान दिया है । जो अलग-अलग सम्प्रदायों में उपासना भेद की पद्धति से तरह-तरह के ग्रंथों में रचित है ।

अपनी अपनी उपासना-भक्ति को दर्शाते हुए साम्प्रदायिक ज्ञान का विश्लेषण करके ग्रंथों की रचना करना, यह प्रत्येक सम्प्रदाय की विशेषता है । सनातन धर्म की परम्परा में मानव कल्याण के लिए आज अनेकों सम्प्रदाय कार्यरत हैं । उन सारे सम्प्रदायों में किसी का लक्ष्य भक्ति करके आत्म-कल्याण की प्राप्ति का है, तो किसी का चार प्रकार की मुक्ति की प्राप्ति का, तो किसी सम्प्रदाय का केवल ऐहिक जीवन में सुखों की प्राप्ति का है । केवल भगवान् की भक्ति को लक्ष्य बनाकर जीवात्मा को मोक्ष की और ले जाने का कार्य जिन वैष्णव सम्प्रदायों में होता है, उनमें से एक "**उद्धव** " सम्प्रदाय भी है, जिसे "**श्रीस्वामिनारायण**" सम्प्रदाय के नाम से जानते हैं।

यह "**श्री**" सम्प्रदाय के अंतर्गत है और भगवान् श्रीकृष्ण के सखा उद्धवजी के कलियुग में हुए अवतार सद्गुरु श्रीरामानंद स्वामी ने स्थापित किया है । उस समय भगवान् श्रीस्वामिनारायण के समकालीन सन्तों में सद्गुरु श्रीशतानंद स्वामी थे । जिन्होंने श्रीस्वामिनारायण भगवान् की कई लीलाएँ "**सत्संगिजीवन**" नामक ग्रंथ में लिखी । प्रस्तुत "**श्रीहरिगीता**" नामक लघु ग्रंथ भी इसी ग्रंथ का एक छोटासा अंश है । जो श्रीसत्संगिजीवन ग्रंथ पाँच प्रकरणों में विभाजित है । उनमें प्रथम प्रकरण के ३२ वे अध्याय से लेकर ३६ वे अध्याय तक यह श्रीहरिगीता समाविष्ट है ।

इसे "**गीता**" इस शब्द से इसलिए कहा गया है, क्योंकि जिस प्रकार श्रीमद् भागवत के तृतीय स्कंध के अंतिम अध्यायों में माता देवहूति के पूछने पर भगवान् कपिलजी ने "**कपिलगीता**" सुनायी थी उसी प्रकार भगवान् श्रीस्वामिनारायण ने अपनी बाल्यावस्था में भवसागर से अनासक्त हुई अपनी माता भक्तिदेवी के उसी प्रकार से पूछने पर अंतःकाल में यह गीतारूप ज्ञान सुनाया था । जब भगवान् श्रीस्वामिनारायण की माता भक्तिदेवी का अंतःकाल आया । तब उनकी सांसारिक बन्धनों की आसक्ति नष्ट हुई । उन्हें ज्ञान हुआ कि यह मेरा श्रीहरिकृष्ण नामक पुत्र ही मुझे इस भवसागर से पार जाने का मार्ग बतला सकता है । तब उन्होंने दोनों हाथ जोड़े श्रीनारायण ऋषि के अवतारस्वरूप अपने पुत्र श्रीहरिकृष्ण को कहा,

ग्राम्यसौख्यविरक्ताऽहं त्वां प्रपन्नाऽस्मि सन्मते! ।
अतो मुमुक्षवे मह्यं वक्तुमर्हसि यद्धितम् ॥ हरिगीता. १/४

मैं पूरी तरह से संसार के सारे पदार्थों से विरक्त बनकर आपके शरण में आयी हूँ । अब मुझे आत्मकल्याण की इच्छा है इसलिए मेरा जिसमें हित हो, वह साधन बतलाने में आप सर्वथा समर्थ हो, अतः उस साधनको आप मुझे बतलाए ।

इस प्रकार अपनी माता का वचन सुनकर बालस्वरूप श्रीहरिकृष्णजी ने देखा कि अब वह तत्त्वज्ञान पाने के लिए योग्य बन गई है तब सन्तपुरुषलक्षण, धर्म, ज्ञान, वैराग्य एवं

भक्ति का विस्तृत विश्लेषण करते हुए प्रस्तुत पंचाध्यायीरूप श्रीहरिगीता का ज्ञान उन्होंने अपनी माता को दिया । जिसे सुनकर वह मोक्ष की अधिकारी बनी ।

इसी गीता के अन्तिम अध्याय के ९५ वे श्लोक में इसे समस्त वेदों का सार कहा गया और यह भी कहा है कि भगवान् श्रीहरि के मुखकमल से निकली हुई इस संपूर्ण गीता का अथवा एक ही अध्याय का पठन-पाठन तथा श्रवण करनेवाला मनुष्य अपने जीवन में जो भी संकल्प करेगा उसके वे सारे पूरे होंगे और जो भक्त निष्कामभाव से पाठ करेगा उसे निश्चितरूप से भगवद्भक्ति की प्राप्ति होगी ।

इस प्रकार की महिमा को धारण करनेवाली इस हरिगीता का पठन एवं श्रवण करना मुमुक्षुओं के लिए अनिवार्य है । जिससे उन्हें धर्म, ज्ञान, वैराग्य के साथ गोपियों की तरह भगवान् श्रीकृष्ण में प्रेमलक्षणा भक्ति की वृद्धि अवश्य होती है ।

अतः वड़ताल में विराजमान राजाधिराज भगवान् श्रीलक्ष्मीनारायण देव तथा हमारे इष्टस्वरूप श्रीहरिकृष्ण महाराज की निःसीम कृपा से तथा सभी के संकटों और दुष्टों का दलन करनेवाले श्रीकष्टभंजनदेव एवं गुरुवर्य सद्गुरु श्रीगोपालानन्द स्वामीजी की अनुकंपा से, वड़ताल पिठाधिपति प.पू.ध.धू.१००८ श्रीराकेशप्रसादजी महाराजश्री तथा अ.नि.सद् शास्त्री श्रीनीलकंठदासजी, हमारे गुरुवर्य सद्.शास्त्री

श्रीधर्मप्रसाददासजी, शास्त्री स्वामी श्रीहरिप्रकाशदासजी (गांधीनगर), जिन्होंने मुझे साक्षर बनाकर इस साहित्यविद्या की अच्छी और सच्ची शिक्षा दी, ऐसे विद्यागुरु शास्त्री स्वामी श्रीज्ञानप्रकाशदासजी (गांधीनगर) एवं हमारे मार्गदर्शक सद्.शास्त्री श्रीभक्तिप्रकाशदासजी, इन सभी महानुभावों के शुभाशीर्वाद से तथा वड़ताल मंदिर के चेरमेनश्री आदरणीय पू.देवस्वामीजी एवं मंदिर के महंतश्री श्रद्धेय डाँ शास्त्री स्वामी श्रीसंवल्लभदासजी के सहयोग से, इस हरिगीता का हिंदी भाषा में अनुवाद मैं कर सका ।

किसी भी सम्प्रदाय की साहित्य संपदा उस सम्प्रदाय का आत्मा माना गया है । क्योंकि सांप्रदायिक साहित्य से ही सम्प्रदाय के तत्त्वों को हर घर में पहुँचाया जा सकता है । आज हम सब इस बात के साक्षी है कि श्रीस्वामिनारायण सम्प्रदाय का विस्तार समूचे विश्व में जोर-शोर से हो रहा है । इसका कारण यह है कि यह सम्प्रदाय सनातन वैष्णव परम्परा से जुड़ा है । इसकी सारी गतिविधियाँ वेदों, शास्त्रों तथा पुराणों में कहे नियमों से ही चलती हैं ।

इसलिए आज के समय में राष्ट्रभाषा हिन्दी में भी साम्प्रदायिक साहित्य होना अनिवार्य है और वैसे भी श्रीस्वामिनारायण भगवान् का जन्म हिन्दी प्रदेश में ही हुआ है, तो इस कारण से हिन्दी भाषा का महत्त्व सम्प्रदाय में और भी बढ़ जाता है ।

अनुवादकीय...

इस हरिगीता के हिन्दी अनुवाद को प्रकाशित करने का दायित्व वड़ताल मंदिर ने स्वीकार किया । अतः मैं मंदिर के चेरमेनश्री, महंतश्री तथा सभी सदस्यों का आभार व्यक्त करता हूँ । और सभी वाचकों को निवेदन करता हूँ कि प्रस्तुत हरिगीता में किसी प्रकार की कोई क्षति रही हो, तो मुझे अज्ञानी समज कर क्षमा करें और आशीर्वाद दे कि आनेवाले पुस्तकों में मुझसे इस प्रकार की कोई क्षति न रहे ।

समर्पण

इस विशाल सम्प्रदाय-सरोवर में यह हिन्दी श्रीहरिगीता रूप कमलपुष्प खिला है । ऐसे कमलपुष्प को, दया के महासागर एवं जिनकी शिष्य परम्परा में शिष्यत्व मिलना सबसे बड़ा सौभाग्य है ऐसे गुरुवर्य "**सद्गुरु श्रीगोपालानन्द स्वामीजी**" के चरणकमल में मैं समर्पित करता हूँ । "अस्तु" जय श्रीस्वामिनारायण ।

एवं वड़ताल संस्थान की ओर से राष्ट्रभाषा का यह संस्करण राष्ट्रहित के लिए भी समर्पित

अनुवादक
शास्त्री भक्तिकिशोरदास...

प्रकाशकीयम्

आज यह ''हरिगीता'' नाम आप सबके लिए जरुर नया है किन्तु श्री स्वामिनारायण संप्रदाय के अनुयायी के लिए चिर-परिचित है । तथापि आज आमजनता के साथ सबके लिए आनंददायक समाचार हैं । क्योंकि यह आज हरिगीता राष्ट्रभाषा में प्रसिद्ध हो रहाँ है ।

भगवान श्री स्वामिनारायण ने अपने जीवनकाल में साहित्य एवं साहित्यकारों का सर्जन किया है । प्रस्थात्रयी भाष्य के साथ साथ लोकभाषा में कीर्तन एवं ग्रंथों का सर्जन हुआ । आर्षद्रष्टा शतानंद स्वामीजीने ''सत्संगिजीवनम्'' ग्रंथ में श्रीहरिचरित्र एवं उपदेशक का ग्रथन किया है । उसमें माता भक्ति एवं बालप्रभु श्रीघनश्याम के संवाद हैं । यही संवाद को हरिगीता के नाम से जाना जाता है । मुमुक्षुजनों के लिए अध्यात्म रसायण स्वरूप इसका राष्ट्रभाषामें अनुवाद का पुण्यकार्य विद्वान शास्त्री श्री भक्तिकिशोरदासजीने किया है ।

आज वडताल पीठस्थान के वर्तमान पीठाधिपति प.पू.ध.धू. १००८ आचार्य श्रीराकेशप्रसादजी महाराज के गादीपदासिन के २० वर्ष के उपलक्ष्य में प्रस्तुत प्रकाशन हो रहा है ।

श्रीस्वामिनारायण संप्रदाय गुजरात में विशेष रुप से प्रचलित रहा है तथापि आरंभ से आजदिन तक राष्ट्रीयभाषा की सेवा होती रही है। यह प्रकाशन इसी सेवा का एक पुष्प है। नजदीक में श्रीमद् सत्संगिजीवनम् का भी हिन्दी अनुवाद तैयार किया जा रहा है।

आज वडताल संस्थान मेनेजींग ट्रस्टी बोर्ड के माध्यम से द्विशताब्दी ग्रंथमाला के प्रथमपुष्प आप सबके करकमलमे प्रदान कर रहे हैं।

स्वा. देवप्रकाशदासजी — चेरमेनश्री, वडतालधाम

डॉ. शा. संतवल्लभदास (Ph.D., D.Litt.) — मुख्य कोठारीश्री, वडतालधाम

परम पूज्य धर्मधुरंधर १००८ आचार्य श्री राकेशप्रसादजी महाराजश्री - एक परिचय

- आपश्री को गादी पर विराजमान हुए २० साल पूरे हो रहा हैं इस अवसर पर समग्र सत्संग समाज के समक्ष आपके २० वर्ष के स्वर्ण काल का परिचय करवाते हुए हम अनुग्रहित है ।
- आपश्री सत्संग महासभा के प्रयास और सद्‌गुरु श्री गोपालानंद स्वामी और श्री कष्टभंजन देव के आशीष के साथ ३१-०१-२००३ (संवत-२०५९, पौष वद-१४) को वड़तालवासी श्रीलक्ष्मीनारायण देव की गादी पर विराजमान हुए ।
- आपश्री ने दीक्षा और प्रतिष्ठा द्वारा इस महान सत्संग का पोषण किया है । वर्ष २००३ से २०२२ के कार्तिक मास तक आपने ८२० संतो को दीक्षित कर सत्संग को महान योगदान दिया है । जो मूल संप्रदाय के लिए गौरव लेने वाली बात है, आपके स्नेही और वात्सल्य भाव के कारण १२६१ अधिक संत, ६०८ अधिक पार्षद और १९ ब्रह्मचारी सदैव आपकी अनुवृत्ति में रहते हैं ।
- आपने हरिमंदिर और शिखरबंद ४९७ मंदिरों की प्राण प्रतिष्ठा की है । इसमें नए मंदिरों और पुनर्निर्मित मंदिरों में प्रतिष्ठा की पुनः प्रतिष्ठा शामिल है ।
- आप लगातार सत्संग के उत्कर्ष के लिए विचारशील रहते है । कथा-पारायण, शाकोत्सव, पाटोत्सव, शिलान्यास, उद्‌घाटन, रंगोत्सव आदि ११, ५४३ बड़े प्रसंगों को आपने शोभायमान किया है । इसके अतिरिक्त असंख्य छोटे बड़े प्रसंगों को आपने सुशोभित किया हैं ।
- आपने लगभग ६९,८७७ श्रद्धालु भक्तो के घर घर जाकर उनके घरो को पावन किया है । तदुपरांत सत्संग की व्यस्तता में भी आप विदेशों में बसे भक्तों को भूले नहीं हैं और भक्तो के सुखार्थ यूके की ७, कनाडा की ४, अफ्रीका की ३ (केन्या, युगांडा, तंजानिया), ओस्ट्रेलिया की ४, दुबई की ३ (७ देश), बहरीन की १, अमेरिका की २९ सत्संग यात्राएं की हैं ।

- आपके आशिर्वाद से अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया, कनाडा, यूके और आफ्रिका में सत्संग मण्डली और संतों के द्वारा अनेक मंदिरों का निर्माण हुआ हैं ।
- आपके २७५८ से अधिक शहरों और गांवों में सत्संग विचरण, ८ संत शिविरों, ६३ बाल-युवा एवं प्रौढ़ भक्त शिविरों में आशीर्वाद और मार्गदर्शन कर एक भद्र समाज का निर्माण किया है ।
- सत्संग के अप्रतिम बड़े बड़े उत्सवों और आयोजनों जैसे भव्य श्री हरिकृष्ण महाराज १,२,३ श्री रघुवीरजी महाराज, घोलेराधाम, सारंगपुरधाम, जूनागढधाम, गढपुरधाम, नीलकंठधाम, सुवर्ण शिखर, स्वर्ण मंदिर का उद्घाटन, रुस्तमबाग मूर्ति महोत्सव, वचनामृत द्विशताब्दी महामहोत्सव, सरधार मूर्तिप्रतिष्ठा महोत्सव, अहमदाबाद गादी पदारूढ षष्ठीपूर्ति की शोभा को बढ़ाया है । सेवा करने वालो को प्रेम और सराहना देकर प्रोत्साहित किया जाता है । साथ ही अनेक धर्माचार्यों एवं सामाजिक, राजनीतिक, युवा गणमान्य व्यक्तियों से शिष्टाचार भेट कर आपसी संवाद और समन्वय स्थापित किया है । आपके आदेशानुसार गादी वाले मातृश्रीने २४६ त्यागी बहनों को दीक्षा दी है और वर्तमान में मातृश्री की अनुवृत्ति में ४२७ से अधिक संख्या में सांख्य योगिनी माताएँ हैं ।
- पूज्य मातृश्री ने सूरत में ३, मालसर में १, द्रोणेश्वर में १ और चारधाम, वड़ताल, नैमिषारण्य में शिविर और सारंगपुर, दुबई आदि सैकड़ों ग्राम सभाओं में सत्संग शिविर, कथापारायण, महामहोत्सव एवं अनेक गांवो की सत्संग सभा में उपस्थित रहकर आशीर्वाद प्रदान कीए है, जिससे सत्संग का संवर्धन और विकास हुआ है ।
- आपके इस गादी काल की स्वर्णिम उपलब्धियों के लिए हम आपको कोटि कोटि वंदन कर हार्दिक बधाई प्रेषित करते है ।
- साहित्य प्रकाशन समिति की ओर से साधु शुकदेवप्रसाददास के जय श्री स्वामिनारायण ।

अनुक्रमणिका

अध्याय - १

१.	भवसागर से अनासक्त हुई भक्तिदेवी की मोक्षरूप जिज्ञासा	०१
२.	कल्याण-प्राप्ति का साधन भगवत् शरणागति	०३
३.	आश्रय करने योग्य सत्पुरुषों के लक्षण	०८

अध्याय - २

४.	भगवान् की भक्ति में उपयोगी धर्म का निरूपण	१६
५.	चारों वर्ण के साधारण तथा विशेष धर्मों का वर्णन	१७
६.	चार वर्णों की आजीविका	१९
७.	ब्रह्मचर्याश्रम के सामान्यधर्मों का वर्णन	२०
८.	गृहस्थ के साधारण धर्म	२३
९.	स्थावरसृष्टि में पिप्पल तथा जंगमसृष्टी में भक्तों की श्रेष्ठता	२६
१०.	संपत्तिवान् गृहस्थ के धर्म	३०
११.	सधवा-विधवा स्त्रियों के धर्मों का निदर्शन	३२
१२.	वानप्रस्थाश्रमिओं के धर्मों का निरूपण	३३
१३.	संन्यासाश्रम के सामान्य नियम	३४
१४.	कलियुग में संन्यास का निषेध होने से अन्य व्यवस्था का निरूपण	३५

अध्याय - ३

१५. आत्मा के स्वरूप-ज्ञान का वर्णन ४०

१६. परमात्मा के स्वरूप-ज्ञानका निरूपण ४२

१७. सृष्टि का क्रम ४५

१८. विराट्पुरुष की उत्पत्ति का प्रतिपादन ४९

अध्याय - ४

१९. वैराग्य के लक्षण ५५

२०. वैराग्य की उत्पत्ति कैसे हो ? ५६

२१. पापकर्मों से मिलती यमयातना का वर्णन ६१

२२. प्रमुख नरककुण्डों का परिचय ६३

अध्याय - ५

२३. भक्ति शब्द का अर्थ ७१

२४. नवप्रकार की भक्ति का विश्लेषण ७२

२५. सकाम-निष्काम भक्त के लक्षण ८७

।। श्रीहरिगीता समाप्ता ।।

।। श्रीहरिगीता ।।

अध्याय - १

भवसागर से अनासक्त हुई भक्तिदेवी की मोक्षरूप जिज्ञासा ।

सुव्रत उवाच -

सर्वसद्गुणसम्पन्ना माता प्रेमवती हरिम् ।
नारायणावतारं स्वं पुत्रं प्रोवाच भूपते ! ।।१।।

सुव्रतमुनि ने कहा, हे प्रतापसिंह राजा ! समग्र सद्गुणों से संपन्न माता प्रेमवती (भक्तिदेवी) श्रीनारायण के अवतारस्वरूप अपने पुत्र से इस प्रकार पूछ़ने लगी ।।१।।

प्रेमवत्युवाच -

नमस्तुभ्यं भगवते हरये कष्टहारिणे ।
नारायणाय ऋषये प्रपद्याय मुमुक्षुभिः ।।२।।

प्रेमवतीने कहा, हे प्रभो! मैं आपको नमस्कार करती हूँ । आप ऐश्वर्यसंपन्न तथा समस्त संकटों का नाश करनेवाले "हरि" तथा मुमुक्षुओं के लिए आश्रय करने योग्य साक्षात् "नारायण" ऋषि हैं ।।२।।

अज्ञानस्य निवृत्तिः स्यान्मायाख्यस्य यथाञ्जसा ।
हरे ! संसृतिमूलस्य तथा मामनुशाधि भोः ।।३।।

हे हरे! जन्ममरणरूप भवसागर का यदि कोई मूल कारण है तो वह "माया" है । यही समस्त जीवों को बंधन

में ड़ालती है । अतः इस मायारूप अज्ञान की निवृत्ति जिस प्रकार से हो, उस साधन को आप मुझे बतलाए ॥३॥

ग्राम्यसौख्यविरक्ताऽहं त्वां प्रपन्नाऽस्मि सन्मते ! ।
अतो मुमुक्षवे मह्यं वक्तुमर्हसि यद्धितम् ॥४॥

हे सन्मति! मैं जगत के सांसारिक तुच्छ पदार्थों से विरक्त हो चुकी हूँ । अब मुझे मुक्ति की चाहना है । अतः मैं आपके शरण में आयी हूँ । मेरा जिस प्रकार से हित हो, वह साधन बतलाने में आप सर्वथा योग्य हैं । इसलिए आप वह मुझे बतायें ॥४॥

जानामि त्वामहं साक्षान्नारायणमृषिं प्रभुम् ।
कृतावतारं क्षेमाय भूतले सर्वदेहिनाम् ॥५॥

इस पृथ्वी पर समस्त जीवप्राणी का कल्याण हो, इसलिए यहाँ प्रकट हुए आप साक्षात् नारायणऋषि ही हो, यह बात मैं भलीभाँति जानती हूँ ॥५॥

स त्वं ममाज्ञानमपाहराशु यथा तमोऽर्कः प्रकटप्रतापः ।
स्वमायया गोपितदिव्यभावः सम्प्रार्थयामीति भवन्तमीशम् ॥६॥

अतः ऐश्वर्यसंपन्न आप से मेरी यही प्रार्थना है कि सूर्य जिस प्रकार बाहर के अंधकार का नाश करता है । उसी प्रकार प्रकट प्रताप से आप मेरे अज्ञानरूप अंधकार का नाश कीजिए । क्योंकि सामान्य मनुष्य की भाँति हमारे साथ रहते हुए अपने दिव्यभाव को अपनी माया से आप ने छुपा के रखा है ॥६॥

सुव्रत उवाच -

एवं जनन्या प्रणयेन पृष्टो हरिः स्वतःसिद्धविशुद्धबोधः ।
मुमुक्षवेऽऽध्यात्मिकशास्त्रमाद्यं प्रीतः स तस्यै नृपते! जगाद ॥७॥

सुव्रतमुनि ने कहा, हे राजा! इस प्रकार माता प्रेमवती ने बड़े प्यार से जब पूछा, तब स्वभाव से ही सिद्ध और विशुद्ध ज्ञानी ऐसे बालस्वरूप श्रीहरिकृष्ण अति प्रसन्न हुए। तदनन्तर कल्याणप्राप्ति की अभिलाषा करनेवाली अपनी माता को वे आत्मा-परमात्माविषयक अध्यात्मज्ञान को इस प्रकार देने लगे ॥७॥

कल्याण-प्राप्ति का साधन भगवत् शरणागति ।

श्रीहरिरुवाच -

शृणु मातर्हितं वच्मि भवत्यै शास्त्रसम्मतम् ।
मुमुक्षवे विरक्तायै निर्णीतं वेदवेदिभिः ॥८॥

बालस्वरूप श्रीहरिकृष्ण ने कहा, हे माता! आप इस भवसागर से विरक्त हो चुकी हो, इसलिए आपके मन में मोक्ष पाने की कामना हुई है। अतः जिसमें आपका हित समाया है और सभी शास्त्रों ने तथा शास्त्रज्ञ ऋषिमुनियों ने भी जो मान्य किया है, उसी मोक्ष के साधन को मैं आपको बतलाता हूँ ॥८॥

श्रीकृष्णो भगवान् साक्षाद्यो विष्णुः पुरुषोत्तमः ।
स एव सर्वभावेन सेवनीयो मुमुक्षुभिः ॥९॥

जो साक्षात् श्रीविष्णु पुरुषोत्तम हैं, वही भगवान् श्रीकृष्ण, सभी मुमुक्षुओं के लिए सर्वभाव से सेवा-आराधना करने योग्य हैं ।।९।।

तस्यैव मायया लोको मोहितो याति संसृतिम् ।
अतस्तं ये प्रपद्यन्ते तां तरन्ति त एव हि ॥१०॥

इस समूचे संसार में उन्हीं की माया से मोहित समस्त जीवप्राणी जन्ममरणरूप भवसागर में भटकते रहते हैं । उनमें से जो प्राणी उस परमात्मा की शरण में जाते हैं, वे ही उनकी माया से पार हो सकते हैं, या हो जाते हैं ।।१०।।

सतां सङ्गेन बुद्ध्वाऽऽदौ तन्माहात्म्यं तदाप्तया ।
स्वधर्मज्ञानवैराग्ययुजा भक्त्या स सेव्यताम् ॥११॥

माता ! यदि कल्याण-प्राप्ति की कामना हो तो, मनुष्य को चाहिए कि वह सर्वप्रथम संतों की संगति से परमात्मा की महिमा को समज ले । तदुपरांत ही उन संतों के समागम से प्राप्त हुई स्वधर्म, ज्ञान तथा वैराग्ययुक्त भक्ति से भगवान की सेवा-भक्ति करे ।।११।।

युक्ताङ्गैस्तु स्वधर्माद्यैस्त्रिभिर्भक्तिर्महाव्रते ! ।
क्वापि केनापि विघ्नेन नैवेह प्रतिहन्यते ॥१२॥

हे महाव्रतधारी माँ! इस प्रकार यदि कोई भक्त स्वधर्म, ज्ञान तथा वैराग्ययुक्त भगवद्भक्ति करता है तो उस भक्ति में कदापि विघ्न-बाधा नहीं होती ।।१२।।

एतेष्वेकतमेनापि सा हीनाङ्गेन चेद्भवेत् ।
देशकालादिवैषम्ये तस्यां विघ्नो भवेद् ध्रुवम् ॥१३॥

यदि विषम देशकाल के कारण स्वधर्म,ज्ञान तथा वैराग्य इन भक्ति के तीन अंगोंमें से किसी एक अंग की न्यूनता हो जाती है, तो निश्चितरूप से भक्ति में विघ्न-बाधा आने की संभावनाएँ बढ़ जाती है ।।१३।।

कार्यकारणरूपाया मायायाः सर्वथैव तु ।
विनिवृत्तिस्तयैव स्यान्नान्योपायेन वै नृणाम् ॥१४॥

वस्तुतः भगवान की माया जो है, वह कार्य एवं कारणरूपा है । यदि भगवद्भक्त उसकी निवृत्ति चाहता है, तो उसे स्वधर्म,ज्ञान तथा वैराग्ययुक्त भगवद्भक्ति ही करनी होगी। केवल यही एकमेव साधन है, किन्तु अन्य किसी उपाय के द्वारा कोई भी मनुष्य इस माया से पीछा नहीं छुड़वा सकता ।।१४।।

तस्यां तु विनिवृत्तायां शुद्धः कृष्णस्य सेवकः ।
परमं याति तद्धाम यद् ब्रह्मेत्याहुरागमाः ॥१५॥

इस प्रकार जब किसी भक्त की इस माया से पूरी तरह से निवृत्ति हो जाती है । तब वह विशुद्ध भगवद्भक्त भगवान के उस परमधाम को प्राप्त कर लेता है, जिसे समस्त वेद "ब्रह्म" के नामसे कहते हैं ।।१५।।

अनन्तं चाक्षयं तस्मिन्कालमायाभयोज्झिते ।
धाम्नि सौख्यं समाप्नोति स्वमनोवाञ्छितं च सः ॥१६॥

वह ब्रह्मधाम, जहाँ काल एवं माया का भय कदापि नहीं होता । उस अनंत-अपार भगवान् के धाम में जाकर वह विशुद्ध भगवद्भक्त मनचाहे सुखों को प्राप्त करता है ।।१६।।

सुव्रत उवाच -

वेदशास्त्रपुराणानां पञ्चरात्रागमस्य च ।
सिद्धान्तं पुत्रवाक्यं सा श्रुत्वोवाच पुनः प्रसूः ।।१७।।

सुव्रतमुनि ने कहा, हे राजा! इस प्रकार वेद, शास्त्र, पुराण तथा पंचरात्र आगम इत्यादि सभी ग्रंथों में लिखित सिद्धांतरूप अपने पुत्र के वचनों को सुनकर माता पुनः उनसे इस प्रकार कहने लगी ।।१७।।

प्रेमवत्युवाच -

सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञ ! सिद्धान्तोऽयं त्वयोदितः ।
साङ्ग्या कृष्णभक्त्यैव मायाया यन्निवर्तनम् ।।१८।।
तदेतत्तत्त्वतः सर्वं विवित्सामि महामते ! ।
योषाया मे यथा बोधः स्यात्तथा वक्तुमर्हसि ।।१९।।

प्रेमवती ने कहा, हे सर्वशास्त्र के तत्त्वज्ञाता! स्वधर्म, ज्ञान तथा वैराग्ययुक्त भगवद्भक्ति करने से ही माया की निवृत्ति हो सकती है । इस प्रकार आपने अभी मुझे जो मोक्ष पाने में उपयोगी साधन को बताया। उसके विषय में मैं तत्त्वतः विस्तार से जानना चाहती हूँ । हे महामति! मैं एक स्त्री हूँ । अतः जिस प्रकार उस साधन को मैं सरलता से समझ

सकूँ, उसी प्रकार से आप मुझे वह साधन बतलाने की कृपा करें ।।१८-१९।।

हरेर्माहात्म्यबोधाद्या स्वधर्माद्यङ्गसंयुता ।
भक्तिः प्राप्या यतस्तेषां ब्रूहि लक्ष्माणि मे सताम् ।।२०।।

आपने पहले ही कहा कि संतों की संगति से ही स्वधर्म, ज्ञान तथा वैराग्ययुक्त भक्ति की प्राप्ति होने पर माया का नाश किया जा सकता है तथा उन्हींसे ही भगवान की महिमा का बोध होता है तो ऐसे संतों के लक्षणों को भी आप मुझे बतायें ।।२०।।

धर्मादीनां लक्षणानि विविच्य च पृथक् पृथक् ।
ब्रूहि मे तत्त्वतः कृष्ण ! सर्वज्ञोऽस्ति यतो भवान् ।।२१।।

हे हरिकृष्ण! आप सर्वज्ञ हैं । अतः स्वधर्म, ज्ञान, वैराग्ययुक्त भक्ति का नाना प्रकार से निरूपण कर के तत्त्वतः आप मुझे सुनायिए ।।२१।।

सुव्रत उवाच -

जनन्येत्थं स आपृष्टः पुरातनमुनिर्हरिः ।
तामुवाचादृतस्तस्याः सद्धर्मादिविवित्सया ।।२२।।

सुव्रतमुनि ने कहा, हे राजा! इस प्रकार स्वधर्म इत्यादि के विषय में जानने के लिए जब माताने प्रश्न किया तब पुरातन मुनि अर्थात् श्रीनारायणऋषि के समान वर्णिवेष को धारण करनेवाले बालस्वरूप श्रीहरिकृष्ण, माता के प्रति बड़े आदरभाव से इस प्रकार कहने लगे ।।२२।।

श्रीहरिरुवाच-

समीचीनं त्वया पृष्टमिदं सर्वहितावहम् ।
आत्मनः श्रेय इच्छन्त्या मातर्वेद्यं बुधैरपि ॥२३॥

बालस्वरूप श्रीहरिकृष्ण ने कहा, आत्मकल्याण की कामना करनेवाली हे माता! सभी जीवों का हित करनेवाला आपका यह प्रश्न सर्वथा उचित ही है, और तो और ज्ञानी मनुष्यों के लिए भी यह प्रश्न समझने के योग्य है ॥२३॥

साङ्गया हेतुभूतानां भक्तेरादौ सतां सति ! ।
लक्षणानि ब्रुवे तुभ्यं सेव्यानां हि मुमुक्षुभिः ॥२४॥

हे साध्वि ! सर्व प्रथम मैं आपको उन संत-महापुरुषों के लक्षणों को बताता हूँ। जो संत मुमुक्षुओं के लिए समागम करने योग्य हैं तथा उपर्युक्त भक्ति की प्राप्ति के लिए भी कारणभूत हैं ॥२४॥

आश्रय करने योग्य सत्पुरुषों के लक्षण ।

दयालवः क्षमाशीलाः सर्वजीवहितेच्छवः ।
तितिक्षवश्चानसूयाः शान्ता अनुदितारयः ॥२५॥

जो संत-महापुरुष बड़े दयालु, सभी जीव-प्राणि के हित करनेवाले, प्रारब्धसे मिलें सुख-दुःखों को सहन करनेवाले होते हैं, जिनमें लेशमात्र भी असूया-जलन नहीं होती, जो हमेशा शांत रहते हैं, जो अजातशत्रु होते हैं ॥२५॥

अनीर्ष्यवश्च निर्वैरा निर्मानाश्च विमत्सराः ।
यथोचितं मानदाश्च प्रियसत्यगिरस्तथा ॥२६॥

जो सदैव ईर्ष्यासे रहित होते हैं, किसी के साथ किसी भी प्रकार की जो वैरबुद्धि नहीं रखतें, जो निरभिमानी तथा मत्सर (द्वेष) रहित होते हैं, जिसकी जैसी योग्यता हो, उसे उस प्रकार से जो सम्मानित करते हैं तथा जो प्रिय और सत्य-वचन बोलते हैं ।।२६।।

जितकामा जितक्रोधा जितलोभाश्च निर्मदाः ।
अहन्ताममताहीनाः स्वधर्मदृढवर्तनाः ।।२७।।

जिन्होंने काम, क्रोध तथा लोभरूप अंतःशत्रुओं को जीत लिया हैं, जो मदसे तथा मैं और मेरेपन से रहित होकर केवल अपने धर्म में ही एकनिष्ठ होते हैं ।।२७।।

निर्दम्भाः शुचयो दान्ता ऋजवो मितभाषिणः ।
जितेन्द्रिया अप्रमत्ता निर्द्वन्द्वा धैर्यशालिनः ।।२८।।

जो दंभ रहित होकर अंदर-बाहर पवित्र रहते हैं, जो बाह्य इन्द्रियों का दमन करते रहते हैं, जो मितभाषी और जितेन्द्रिय होकर स्वधर्म का पालन बड़ी सावधानी से करते हैं । जो सुख-दुःख, मान-अपमान तथा हर्ष-शोक आदि द्वंद्वों से रहित तथा धैर्यशाली होते हैं ।।२८।।

आकूतिचित्तिचापल्यरहिता निष्परिग्रहाः ।
बोधने निपुणा आत्मनिष्ठाः सर्वोपकारिणः ।।२९।।

पंच कर्मेन्द्रियाँ तथा पंच ज्ञानेन्द्रियाँ, इन दशों इन्द्रियों की चंचलता से रहित होकर जो संत किसी वस्तुका संग्रह नहीं करते । जीवों को ज्ञान देने में कुशल तथा तीनों देह

तथा तीनों अवस्थाओं से परे आत्मा में ही जिनकी निष्ठा बनीं रहती हैं एवं सभी जीव-प्राणी पर जो उपकार करते रहते हैं ।।२९।।

निर्भया निरपेक्षाश्च द्यूतादिव्यसनोज्झिताः ।
श्रद्धालव उदाराश्च तपोनिष्ठा निरेनसः ।।३०।।

जो निर्भयता से विचरण करते हैं, जो किसी से कोई अपेक्षा नहीं करते, द्यूत आदि व्यसनोंसे रहित होकर नियमों का पालन श्रद्धा से करते हैं, जिनका स्वभाव बड़ा ही उदार होता हैं, तपस्या करने में जिनकी निष्ठा बनी रहती हैं तथा जो निष्पाप होते हैं ।।३०।।

त्यक्तग्राम्यकथावार्ताः सच्छास्त्रव्यसनास्तथा ।
विषयासक्तिरहिता आस्तिकाश्च विवेकिनः ।।३१।।

ग्राम्यवार्ता से रहित होकर केवल जिनको सच्छास्त्रों का ही व्यसन होता हैं, जो पंचविषयों से अनासक्त, आस्तिक एवं विवेकी होते है ।।३१।।

मद्यमांसादिसंसर्गरहिताश्च दृढव्रताः ।
पैशुन्यस्तैन्यहीनाश्च परगुह्याप्रकाशकाः ।।३२।।

जो संत मद्य-मांस से हमेशा दूर ही रहते हैं, अपने नियमों का पालन बड़ी सुदृढ़ता से करते हैं तथा चुगली करना, चोरी करना और किसी की कोई गुप्त बात को प्रकाशित करना, इन सारी बातों से जो सदैव ही दूर रहते हैं ।।३२।।

जितनिद्रा जिताहाराः सन्तुष्टाः स्थिरबुद्धयः ।
अहिंसवृत्तयोऽतृष्णाः सुखदुःखसमास्तथा ॥३३॥

निद्रा तथा आहार को जीतनेवाले, सदैव संतोषी, स्थिरबुद्धि होकर अहिंसावृत्ति से जीवन यापन करनेवाले, जिनके मनमें किसी प्रकार की कोई तृष्णा नहीं होतीं तथा सुख-दु:ख में जो समानभाव रखते हैं ।।३३।।

अकार्यलज्जाः स्वश्लाघान्यनिन्दाभ्यां विवर्जिताः ।
यथोक्तब्रह्मचर्याश्च यमैश्च नियमैर्युताः ॥३४॥

शास्त्रविरुद्ध कर्म करनेमें जो लज्जाका अनुभव करते हैं, अपनी प्रशंसा और दूसरों की निंदा का जो सर्वथा त्याग करते हैं, शास्त्रों में कहे ब्रह्मचर्यव्रत का तथा यम-नियमों का पालन करते हुए जो जीवन जीते हैं ।।३४।।

जितासना जितप्राणाः श्रीकृष्णाङ्घ्रिदृढाश्रयाः ।
कृष्णभक्तिपरा नित्यं कृष्णार्थसकलक्रियाः ॥३५॥

योगरूप आसनों को तथा अपने प्राणों को जीतकर जो केवल भगवान श्रीकृष्ण के ही चरणकमलों का दृढ़ आश्रय करते हैं, जिनका सारा क्रियाकलाप केवल भगवान के लिए ही होता हैं । इस प्रकार से जो सदैव भक्ति-परायण जीवन जीते हैं ।।३५।।

अवतारचरित्राणि कृष्णस्यानुदिनं मुदा ।
शृण्वन्तः कीर्तयन्तश्च कृष्णध्यानपरायणाः ॥३६॥

भगवान श्रीकृष्ण के स्वरूप में ही ध्यान लगाकर नियमितरूप से जो भगवान के अवतारों की लीलाओं का ही बड़े भाव से वर्णन और श्रवण करते रहते हुए अपना सारा जीवन बिताते हैं ।।३६।।

अयातभगवद्भक्तिवर्जितक्षणमात्रकाः।
एवं लक्षणसम्पन्ना ज्ञेयाः सन्तस्त्वयानघे ! ॥३७॥

हे निष्पाप माता ! भगवद्भक्ति के अतिरिक्त जिनकी एक क्षण भी व्यर्थ नहीं जाती, ऐसे समस्त सद्गुणों से संपन्न महापुरुषों को ही "**संतपुरुष**" समझना चाहिए ।।३७।।

एतेषामेव सङ्गेन साङ्गा भक्तिर्मुमुक्षुभिः ।
कृष्णस्य प्राप्यते नूनं माहात्म्यज्ञानपूर्विका ॥३८॥

जो मुमुक्षु इस प्रकार के संत-महापुरुषों की संगति करता है, उसका जीवन महिमा तथा ज्ञानयुक्त भगवद्भक्ति से निश्चित ही भर जाता है अर्थात् उसके जीवन में इस प्रकार की भक्ति का अवश्य उदय हो जाता है ।।३८।।

एभ्यः कृष्णावताराणां चरित्रश्रवणं भवेत् ।
अद्भुतानां चरित्राणां कृष्णस्य च भवेच्छ्रुतिः ॥३९॥

ऐसे संतों के मुखकमल से ही भगवान् तथा भगवान् के अवतारों की अद्भुत लीलाचरित्ररूप कथाएँ मनुष्यों को सुनने को मिलती हैं ।।३९।।

गोलोकाक्षरवैकुण्ठादिषु धामसु यत्प्रभोः ।
अनन्तमस्ति चैश्वर्यं तदप्येभ्योऽवगम्यते ।।४०।।

गोलोक, वैकुण्ठ, तथा अक्षर इत्यादि भगवद्धामों में रहे अनंत-अपार भगवान् के ऐश्वर्यों को मुमुक्षु इन्हीं संतों के माध्यम से जान सकता हैं ।।४०।।

तथा क्षीरार्णवस्थस्य व्याप्तस्य ब्रह्मतेजसा ।
श्वेतद्वीपस्य माहात्म्यमेभ्य एवागम्यते ।।४१।।

और क्षीरसागर के तट पर भगवान का जो ब्रह्मतेज से व्याप्त श्वेतद्वीप धाम है, उसकी महिमा की जानकारी भी इनके द्वारा ही मुमुक्षुओं को प्राप्त होती हैं ।।४१।।

वृन्दावनस्य द्वार्वत्या विशालायाश्च बुद्ध्यते ।
अत्रत्यभगवद्धाम्नां माहात्म्यं चैभ्य एव हि ।।४२।।

इसी प्रकार पृथ्वी पर रहे वृंदावन, द्वारिका एवं बदरिकाश्रम इत्यादि भगवान के धामों की महिमा को भी भक्तगण इन सन्तों से ही भलीभाँति जान सकते हैं ।।४२।।

पुलहाश्रममुख्यानां क्षेत्राणां महतामपि ।
गङ्गायम्यादितीर्थानां खण्डेऽस्मिन्भारते सताम् ।।४३।।

इस भारतवर्ष में रहें पुलहाश्रम आदि पवित्र क्षेत्रों की तथा शोभायमान पावनकारी गंगा, यमुना आदि तीर्थों की महिमा भी ऐसे महापुरुषों से ही जानी जाती हैं ।।४३।।

माहात्म्यं कृष्णसम्बन्धाद्यद्यदस्त्यद्भुतं सतः ।
तत्तच्चैभ्यः सर्वमपि ज्ञायते श्रोतृभिर्जनैः ॥४४॥

भगवान् श्रीकृष्ण के विषय में जो भी अद्भुत आश्चर्य हैं, उनकी महिमा इन्हीं के द्वारा श्रोताओं को जानने को मिलती है ॥४४॥

सद्भ्य एतच्छ्रुतेः कृष्णमाहात्म्यं सम्यगीयते ।
तेनैव भक्तिः कृष्णे स्यात्स्वधर्मादिभिरन्विता ॥४५॥

वस्तुतः सर्वप्रथम संतों के मुखकमल से भगवान की लीलाओं का श्रवण होता है । फिर उसके द्वारा भगवान की महिमा समझ में आती है फिर महिमा समझने पर स्वधर्म, ज्ञान आदि से भगवान् की भक्ति मनुष्य के हृदय में निःसन्देह प्रकट हो जाती है ॥४५॥

दृष्टाः स्पृष्टा नता वा कृतपरिचरणा भोजिताः पूजिता वा
सद्यः पुंसामघौघं बहुजनिजनितं घ्नन्ति ये वै समूलम् ।
प्रोक्ताः कृष्णेन ये वा निजहृदयसमा यत्पदे तीर्थजातं
तेषां मातः ! प्रसङ्गात्किमिह ननु सतां दुर्लभं स्यान्मुमुक्षोः ॥४६॥

हे माता ! उपर्युक्त जिन संत-महापुरुषों के दर्शन, स्पर्शन एवं प्रणाम करने से तथा जिनके श्रीचरणों की सेवा करने से, जिन्हें भोजन कराने से और चंदन-पुष्पों से जिनका पूजन करने से ही अनंत जन्मों के पापसमूहों का तत्काल नाश हो जाता है । जिनको भगवान श्रीकृष्णने भी अपने हृदय के समान कहा हैं और जिनके चरणकमल में समस्त तीर्थ

निवास करते हैं, ऐसे संत-महापुरुषों के प्रसंग से इस जगत में मुमुक्षुओं के लिए कोई वस्तु दुर्लभ हो ही नहीं सकतीं अर्थात् ऐसे संतों की संगति से मनुष्य को सारी वस्तुएँ सुलभ हो जाती हैं ।।४६।।

इति श्रीसत्सङ्गिजीवने नारायणचरित्रे धर्मशास्त्रे प्रथमप्रकरणे हरिगीतायां सत्पुरुषलक्षणनिरूपणनामा प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

इस प्रकार श्रीनारायणचरित्र और धर्मशास्त्ररूप श्रीसत्संगिजीवन के प्रथम प्रकरणान्तर्गत श्रीहरिगीता में सत्पुरुषों के लक्षणों का निरूपण करके पहला अध्याय समाप्त हुआ ।।१।।

अध्याय - २

भगवान् की भक्ति में उपयोगी धर्म का निरूपण ।

हरिरुवाच -

धर्मादीनां लक्षणानि भक्त्यङ्गानामथाम्ब ! ते ।
कथयामि विविच्यैव त्रयाणामपि तत्त्वतः ॥१॥

धर्मपुत्र श्रीहरिकृष्ण ने कहा, हे माता ! भगवद्भक्ति के अंगभूत धर्म, ज्ञान तथा वैराग्य के लक्षणों का शास्त्रों में जिस प्रकार से प्रतिपादन किया है उसी प्रकार से अब मैं आपको विस्तारपूर्वक बतलाता हूँ ।।१।।

तत्र त्रयाणां लोकानां सेश्वराणां तु धारकः ।
धारणीयश्च जीवेशैः सदा धर्मः स उच्यते ॥२॥

उन तीनों में सबसे पहले मैं धर्मका निरूपण करता हूँ । जो ब्रह्मादि ईश्वरों समेत त्रिलोकी को धारण करता है, उसे ही "धर्म" कहते हैं । समस्त जीवों को तथा देवताओं को भी निरन्तररूप से यह धारणीय है अर्थात् धारण करने योग्य है इसलिए भी इसे "धर्म" कहा जाता है ।।२।।

धर्मनिष्ठस्तु पुरुषो हीनजातिकुलोऽपि यः ।
सोऽपि ब्रह्मादिभिः पूज्यः श्लाघनीयश्च जायते ॥३॥

जाति और कुल से हीन होने पर भी यदि कोई मनुष्य धर्म में निष्ठावान् हो, तो उसकी ब्रह्मा आदि देवता भी बड़ी प्रशंसा करते हैं । तथा उनके लिए भी वह पूज्य बन जाता है ।।३।।

धर्मच्युतश्चेद्ब्रह्मादिरीश्वरोऽपि भवेत्क्वचित् ।
तर्हि सोऽप्यल्पकैर्गर्ह्यः स्यात्स्थेयं धर्म एव तत् ।।४।।

तथा ब्रह्मा आदि देवता जैसा कोई महान् हो, फिर भी यदि अपने धर्म से भ्रष्ट हो गया, तो तुच्छ मनुष्य भी उसकी निन्दा करते हैं । अतः सभी मनुष्य अपने-अपने धर्म में ही रहें, यही ठिक है ।।४।।

स चापि वर्तते नृणां वर्णाश्रमविभागतः ।
श्रुतिस्मृतिसदाचारैः प्रमितो हि पृथक्पृथक् ।।५।।

यह धर्म श्रुति-स्मृतियों से प्रतिपादित सदाचारयुक्त कहा है । मनुष्य के चारों वर्ण तथा चारों आश्रम के भेदसे इसका पृथक्-पृथक् वर्णन किया गया है ।।५।।

विप्रक्षत्रियविट्शूद्रा वर्णाश्चत्वार ईरिताः ।
ब्रह्मचर्यं च गार्हस्थ्यं वनं न्यासस्तथाश्रमाः ।।६।।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र ये चार वर्ण हैं तथा ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं संन्यास, ये चार आश्रम हैं ।।६।।

चारों वर्ण के साधारण तथा विशेष धर्मों का वर्णन ।

साधारणो विशेषश्चेत्येवं तेषां द्विधास्ति सः ।
समासेनोभयविधमपि ते वच्म्यहं शुभे ! ।।७।।

हे शुभे ! साधारण तथा विशेष, इस प्रकार मनुष्य के दो प्रकार के धर्म होते हैं । जिन्हें वर्णधर्म एवं आश्रमधर्म कहा

जाता है । ये दोनों धर्मों का मैं संक्षिप्तरूप से वर्णन कर के आपको सुनाता हूँ ।।७।।

अहिंसा सत्यमस्तेयं कामलोभक्रुधां जयः ।
मद्यमांसपरस्त्र्यादेस्त्यागो व्यसनवर्जनम् ।।८।।

मनुष्य को चाहिए कि वह अहिंसाधर्म का पालन करे अर्थात् किसी भी जीवप्राणी की हिंसा न करे, सदैव सत्य बोले, चोरी न करे, काम, क्रोध तथा लोभ को जीते, मद्य-मांस और परस्त्रीसंग का त्याग करे तथा व्यसनों से सदैव दूर रहे ।।८।।

जातिसङ्करताहेतोर्वर्जनं पापकर्मणः ।
सत्सेवा विष्णुभक्तिश्च धर्माः साधारणा नृणाम् ।।९।।

अपनी जाति से जो भ्रष्ट कर दे ऐसे पापकर्मों का कदापि आचरण नहीं करना चाहिए । सदैव संत-महापुरुषों की सेवा तथा भगवान् श्रीविष्णु की भक्ति ही करनी चाहिए । ये सारे मनुष्यों के साधारण धर्म हैं ।।९।।

शमो दमस्तपो ज्ञानं दया श्रद्धा क्षमादयः ।
स्वाभाविका हि विप्रस्य धर्मा एते प्रकीर्तिताः ।।१०।।

आंतरिक इन्द्रियों का शमन और बाह्य इन्द्रियों का दमन करना । तपस्या तथा ज्ञानार्जन करना, दीन-दु:खियों पर दया करना, श्रद्धा से अपने धर्म का पालन करना, निंदा करनेवाले मनुष्यों को भी क्षमा करना, ये ब्राह्मणों के स्वाभाविक धर्म हैं ।।१०।।

शौर्यं धैर्यं बलौदार्ये साधुगोविप्ररक्षणम् ।
क्षत्रस्य सहजा धर्माःप्रोक्ता वार्ता विशस्तथा ॥११॥

शौर्य, धैर्य, बल, उदारता तथा गाय, ब्राह्मण एवं संतों का दुष्टों से रक्षण करना, ये क्षत्रियों के सहज धर्म हैं । खेती, व्यापार, गोरक्षा तथा सूदपर रुपये देना (महाजनी), इत्यादि वैश्यों के विशेष धर्म हैं ।।११।।

शुश्रूषणं द्विजातीनां धर्मः शूद्रस्य चानघे ! ।
हिंसास्तैन्यादिरहितो धर्मोऽन्येषां कुलोचितः ॥१२॥

हे निष्पाप माँ ! तीन वर्णों की सेवा करना, ये शूद्र का धर्म है । चार वर्णों से अन्य मनुष्यों के लिए हिंसा, चोरी तथा व्यभिचार न करना तथा अपने कुल के लिए उचित कर्म करते रहना, यही उनके विशेष धर्म हैं ।।१२।।

चार वर्णों की आजीविका का वर्णन

याजनादिश्च विप्रस्य क्षत्रस्यायुधधारणम् ।
व्यापारश्च विशोऽन्त्यस्य सेवोक्ता जीविका क्रमात् ॥१३॥

यज्ञयाग और स्वाध्याय करना तथा दानग्रहण करना यह ब्राह्मणों की, आयुध धारण कर प्रजा का रक्षण करना यह क्षत्रियों की तथा व्यापार, खेती आदि करना वैश्यों की एवं तीनों वर्ण की सेवा करना, यह शूद्रों की आजीविका कही है ।।१३।।

आपन्नयोर्वैश्यवृत्तिर्विप्रक्षत्रिययोर्मता ।
विशः शूद्रस्य तस्यापि कार्वादेः स्वैव चान्यदा ॥१४॥

यदि किसी संकटकाल में अपनी आजीविका से जीवन का निर्वाह करना कठिन होता हो, तब ब्राह्मण तथा क्षत्रियों को खेती, व्यापार आदि वैश्यों की आजीविका का स्वीकार करना चाहिए । वैश्यों को शूद्रों की आजीविका का तथा शूद्रों को संकरजाति की आजीविका को ग्रहण करना चाहिए और जैसे ही संकटकाल पूरा हो जाय, तो अपनी-अपनी आजीविका को ही ग्रहणकर जीवन को यापन करना चाहिए ।।१४।।

ब्रह्मचर्याश्रम के सामान्यधर्मों का वर्णन ।

त्रैवर्णिको यः संस्कारैः सम्प्राप्तः स्याद् द्विजातिताम् ।
ब्रह्मचर्याश्रमे तिष्ठन्विद्यायै स गुरुं श्रयेत् ।।१५।।

ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य इन तीनों वर्ण का मनुष्य उपनयन संस्कार प्राप्त कर के "द्विज" बन सकता है । इस द्विज ब्रह्मचारी पुरुष को चाहिए कि वह ब्रह्मचर्याश्रम में रहकर वेद आदि का अध्ययन करे और गुरु का आश्रय करे ।।१५।।

कौपीनाच्छादनादीनि वासांस्यावश्यकानि सः ।
कार्पासान्यजिनोर्णादि रक्षेद्दण्डकमण्डलू ।।१६।।

गुरु के सानिध्य में रहते हुए यह ब्रह्मचारी कपास से बने सूती कौपीन तथा उत्तरीय वस्त्रों को परिधान करे। साथ में मृगचर्म, कम्बल, दण्ड तथा कमंडलु भी धारण करे ।।१६।।

जपमालां ब्रह्मसूत्रं बिभृयाच्च जटाः कुशान् ।
अञ्जनाभ्यङ्गगन्धस्रग्भूषणादि विवर्जयेत् ।।१७।।

ब्रह्मचारी को अपने पास जपमाला रखनी चाहिए । यज्ञोपवीत धारण कर वह मस्तक पर जटा रखे । साथ में दर्भ या दर्भ का आसन भी रखे । आँखों में काजल (सुरमा) न लगाए । तेल से शरीर का मर्दन न करे । शरीर पर चंदन का लेपन न करे। तथा फुलों की माला एवं अलंकार भी धारण न करे ।।१७।।

मुक्तेर्द्वारं महत्सङ्गः स्त्रैणसङ्गस्तु संसृतेः ।
द्वारमस्तीति निश्चित्य कुर्यादाद्यं परं त्यजेत् ।।१८।।

महापुरुषों की संगति ही मुक्ति का द्वार है । तथा स्त्री में आसक्त पुरुष नरक का द्वार माना गया है । इस प्रकार निश्चय कर के संतपुरुषों का ही संग करे और असत्पुरुषों की संगति का त्याग करे ।।१८।।

अष्टधा वर्जनं स्त्रीणां तत्स्पर्शस्य तु सर्वथा ।
कुर्याद्वर्णी गुरोर्भार्यामपि वन्देत दूरतः ।।१९।।

ब्रह्मचारी को अष्ट प्रकार से स्त्री का त्याग करना चाहिए । उसके अंग के स्पर्श का भी सर्वथा त्याग करे । तथा गुरुपत्नी को भी दूर से ही प्रणाम करे ।।१९।।

प्राणिमात्रं च मिथुनीभूतं तु मतिपूर्वकम् ।
ब्रह्मचर्यव्रतधरो नैव वीक्षेत कर्हिचित् ।।२०।।
अपि चित्रमयीं योषां देवताप्रतिमां विना ।
क्वापि नैव स्पृशेद्वर्णी गुरुं सेवेत भक्तितः ।।२१।।

वह मैथुनासक्त पशुप्राणिओं को जान बूझकर न देखे। लक्ष्मी आदि देविओं की प्रतिमा के अतिरिक्त स्त्रियों के चित्र तथा प्रतिमाओं का स्पर्श न करे। तथा भक्तिभाव से सदैव गुरु की सेवा करता रहे ॥२०-२१॥

कुर्यात्कालत्रये सन्ध्यावन्दनं प्रतिवासरम् ।
जपं च निजशक्त्यैव मौनं प्रातःप्रदोषयोः ॥२२॥

जिसने ब्रह्मचर्यव्रत धारण किया है, उसे प्रतिदिन त्रिकालसंध्या करनी चाहिए । तथा अपनी शक्ति के अनुसार गायत्रीमन्त्र एवं भगवान के नाम का जप करना चाहिए एवं प्रातः तथा सायंकाल में मौन भी रखना चाहिए ॥२२॥

होमं प्रातस्तथा सायं कुर्याद्भिक्षाटनं च सः ।
वेदाभ्यासपरो नित्यं वसेद्गुरुकुले वशी ॥२३॥

प्रातः तथा सायंकाल में अग्नि में होम कर के वह ब्रह्मचारी भिक्षाटन करने जाया करे । वेदों का अध्ययन करते हुए जीवन यापन करे। इन्द्रियों को वश में रखे। इस प्रकार अपने धर्म का पालन कर गुरुकुल में ही निवास करे ॥२३॥

साङ्गं वेदं सहार्थं च देशकालानुसारतः ।
अधीत्य स यथाशक्ति समावर्तनमाचरेत् ॥२४॥

इस प्रकार निवास करने पर देशकाल के अनुसार अपनी बुद्धि से वेदों के छह अंगों का तथा समस्त अर्थों सहित वेदों का अध्ययन करने के बाद समावर्तन संस्कार संपन्न करे ॥२४॥

गृहस्थ के साधारण धर्म का वर्णन ।

गृही स्यादविरक्तस्तु दत्त्वा स गुरुदक्षिणाम् ।
विरक्तश्चेद्वनं न्यासं श्रयेद्वा नैष्ठिको भवेत् ॥२५॥

हे माता ! यदि ब्रह्मचर्यव्रत धारण करने पर भी जिसे वैराग्य की प्राप्ति नहीं होती, वह साधक अपनी शक्ति के अनुसार गुरु को दक्षिणा दे और गृहस्थाश्रम में प्रवेश करे, यही उसके लिए उचित है। परंतु जो तीव्र वैरागी है, वह वानप्रस्थ अथवा संन्यासाश्रम में प्रवेश करे अथवा नैष्ठिक ब्रह्मचारी ही रहे ॥२५॥

गृही बुभूषुः कुलजां सवर्णां वयसाऽवराम् ।
अनिन्द्यामुद्वहेत्कन्यां न्यायेनोपार्जयेद्धनम् ॥२६॥

गृहस्थाश्रम में जानेवाले ब्रह्मचारी को चाहिए कि वह शुद्धकुल में जन्मी, समान ज्ञाति की तथा अपनी उम्र से छोटी और निर्दोष कन्या के साथ विवाह करे और नीति-न्याय से धन का उपार्जन करता रहे ॥२६॥

स्नानं सन्ध्यात्रयं होमं तर्पणं विष्णुपूजनम् ।
स्वाध्यायं शक्तितः कुर्याद्वैश्वदेवं च सोऽन्वहम् ॥२७॥

वह गृहस्थ प्रतिदिन स्नान करे । सुबह श्याम होम-हवन करे । पितृओं के लिए तर्पण करे । भगवान श्रीविष्णु का पूजन करे और अपनी शक्ति के अनुसार स्वाध्याय तथा वैश्वदेव-कर्म भी करता रहे ॥२७॥

प्रातः कुर्यादापदि तु सन्ध्यां माध्याह्निकीमपि ।
प्रातर्भवां च मध्याह्ने निशि सायन्तनीं तु सः ।।२८।।

संकटकाल हो, तो मध्याह्नवेला की संध्या प्रातःकाल में वह गृहस्थ करे । प्रातःसंध्या मध्याह्नकाल में तथा सायं संध्या रात्री में करे ।।२८।।

सन्ध्यावन्दन-गायत्रीजपविष्ण्वर्चनोज्झितः ।
चतुर्वेद्यप्यसौ विप्रः शूद्र एव न संशयः ।।२९।।

चारों वेदों का ज्ञाता ब्राह्मण होने पर भी यदि वह संध्यावन्दन, गायत्री-जप एवं भगवान श्रीविष्णु का पूजन नहीं करता तो वह ब्राह्मण "शूद्र" ही कहलाता है । इसमें कोई संदेह नहीं है ।।२९।।

अधौतं न स्पृशेद्वासः स्नात्वा कार्पाससम्भवम्।
अस्नातेनापवित्रेण स्पृष्टं धौतं च न स्पृशेत् ।।३०।।

गृहस्थ को चाहिए कि वह स्नान करने के पश्चात् न धोये हुए सूती वस्त्र को भी स्पर्श न करे । तथा जिसने स्नान न किया हो, ऐसे अपवित्र मनुष्य ने यदि शुद्ध वस्त्र को स्पर्श किया हो, तो उस शुद्ध वस्त्र का भी स्पर्श नहीं करना चाहिए ।।३०।।

विवाहकाले दायस्य विभागावसरेऽथवा ।
द्विजातिरादधीताग्निं सति वित्तादिसम्भवे ।।३१।।

जब कोई गृहस्थ धन-वैभव से परिपूर्ण हो, तब विवाह के समय पर तथा अपनी संपत्ति के बँटवारे के

समय अग्नि का आधान करे अर्थात् अग्नि का ग्रहण-स्थापन अवश्य करे ॥३१॥

यथाकालं पोष्यवर्गं पोषयेन्नतु पीडयेत् ।
अन्नाम्बुवस्त्रैरतिथिं तोषयेत्सर्वदा गृही ॥३२॥

उस गृहस्थ को चाहिए कि वह अपने माता-पिता आदि परिवारजनों का अन्न-वस्त्र से पोषण करे, किन्तु उन्हें पीड़ा हो, ऐसा कोई काम न करे । तथा अन्न, वस्त्र तथा जल से अपने घर आये अतिथियों की सदैव सेवा-पूजन करे ॥३२॥

नित्यं कुर्यात्सतां सङ्गं भक्तिं च नवधा हरेः ।
कुसङ्गं नैव कुर्वीत गृहासक्तिं च मूढवत् ॥३३॥

नित्य संतों की संगति में जाकर भगवान् श्रीकृष्ण की नवधा भक्ति करे । कुसंग से दूर रहे तथा मूर्ख मनुष्य की तरह घर में आसक्त न बने ॥३३॥

जीवेभ्यः सकलेभ्योऽपि भक्तानेकान्तिकान्हरेः ।
आधिक्येन विजानीयान्मानरक्षार्हणादिषु ॥३४॥

वह गृहस्थ समस्त जीवप्राणिओं में भगवान के एकनिष्ठ भक्तों की महिमा समझे । दूसरों से अधिक उन्हें ही सम्मान दे, उनका रक्षण करे तथा उनका अर्चन-पूजन भी करे ॥३४॥

स्थावरसृष्टि में पिप्पल तथा जंगम में भक्तों के श्रेष्ठत्व का वर्णन

अश्मादिभ्योऽत्र जीवेभ्यः श्रेष्ठाः सन्ति तृणादयः ।
अन्नौषध्यादयस्तेभ्यस्ततः श्रेष्ठाश्च वीरुधः ॥३५॥
तत आम्रादयो वृक्षाः श्रेष्ठा देवद्रुमास्ततः ।
स्थास्नुष्विति विशेषोऽस्ति चरेष्वथ वदामि तम् ॥३६॥

इस भगवान की रची हुई सृष्टि में पाषाण इत्यादि जीवों से तृण इत्यादि जीव अधिक श्रेष्ठ हैं । उनसे अधिक चावल आदि अन्न तथा ओषधियाँ श्रेष्ठ हैं । उनसे लताएँ तथा उनसे भी आम आदि वृक्ष श्रेष्ठ माने जाते हैं । और इन सभी में पिप्पलवृक्ष सर्वश्रेष्ठ कहलाता है । इस प्रकार स्थावर जगत् की विशेषता है । अब जंगम जगत् की विशेषता बताता हूँ ॥३५-३६॥

पिपीलिकादितः श्रेष्ठा जीवास्तु शलभादयः ।
भ्रमराद्यास्ततस्तेभ्यश्चटकप्रमुखा मताः ॥३७॥

भगवान् के द्वारा रचित इस जंगमसृष्टि में धरती पर रेंगते कीड़ों-मकोड़ों से ऊँचे उड़ते फतिंगे-पतंग श्रेष्ठ हैं, उनसे अधिक सुंगधप्रेमी भ्रमर श्रेष्ठ हैं, उनमें भी गगन में उँड़ती चिड़ियाँ आदि पंछी श्रेष्ठ हैं ॥३७॥

शशादयस्ततोऽजाद्यास्तेभ्यस्तेभ्यो गवादयः ।
ततश्च मनुजास्तेषु वर्णाश्चत्वार उत्तमाः ॥३८॥

उनसे खरगोश आदि प्राणी अधिक श्रेष्ठ हैं, उनसे बकरें आदि श्रेष्ठ है, उनसे गाय आदि तथा उनसे मनुष्य श्रेष्ठ कहलाते हैं, उनमें भी चारों वर्णों के मनुष्य श्रेष्ठ हैं ।।३८।।

ब्राह्मणास्तेषु तेषु च स्वधर्मनिरता वराः ।
ज्ञाननिष्ठास्तेषु तेषु भक्ता एकान्तिका हरेः ।।३९।।

उन चारों वर्णों में ब्राह्मण श्रेष्ठ है, उनसे अधिक धर्म का पालन करनेवाला किसी भी जाति में जन्मा मनुष्य श्रेष्ठ है, उन धार्मिक मनुष्यों में भी जिसे आत्मज्ञान प्राप्त है वह श्रेष्ठ है और उन आत्मज्ञानियों में एकनिष्ठ "**भगवद्‌भक्त**" ही सर्वश्रेष्ठ है ।।३९।।

तेभ्यः श्रेष्ठो न कोऽप्यस्ति सदाऽऽस्ते तेषु यद्धरिः ।
तारतम्यं विदित्वेत्थं बहुमान्या हरिश्रिताः ।।४०।।

हे माँ ! इस प्रकार केवल भगवद्‌भक्तों की ही श्रेष्ठता बताई गई है । क्योंकि उनके हृदयकमल में सदैव भगवान् श्रीहरि विराजमान रहते हैं, इस प्रकार की तारतम्यता को समझकर भगवद्‌भक्त का ही सम्मान-पूजन करना चाहिए ।।४०।।

य एवं न विजानीयात्सदसत्समधीः स तु ।
दोषं महान्तमाप्नोति विवेकं विदधीत तत् ।।४१।।

यदि कोई इस प्रकार का भेद न समझकर सत्पुरुष एवं असत्पुरुष दोनों में समभाव रखता है तो वह बड़ा अपराधी

है । अतः सभी को सत् तथा असत् का विवेक अवश्य रखना चाहिए ।।४१।।

गन्धान् पुष्पस्रजो भूषा वस्त्रान्नादि च भक्तितः ।
गृही निवेद्य हरये निषेवेत च वैष्णवः ।।४२।।

हे माता ! वैष्णव गृहस्थ भक्त को चाहिए कि वह चंदन, पुष्पमाला, आभूषण, वस्त्र तथा अन्न इत्यादि सारे वस्तु-पदार्थ प्रथम भगवान को निवेदन करे, तदुपरांत ही अपने लिए उनका उपयोग करे ।।४२।।

देवान् पितृंश्च तैरेव वासुदेवधियाऽर्चयेत् ।
यथाकालं च पित्रादेः श्राद्धं कुर्याद्यथाविधि ।।४३।।

देवताओं का तथा पितृओं का भी पूजन भगवद्बुद्धि से ही करे अर्थात् इनमें भगवान का निवास है इस प्रकार समझकर भगवान के प्रासादिक चंदनादि उपचारों से पूजन करे । तथा श्राद्ध अर्पण के समय शास्त्रोक्तविधि से पितृ तथा मातृ श्राद्ध भी उसे करना अनिवार्य है ।।४३।।

अकृष्टपच्यैर्मुन्यन्नैः कर्तव्यं श्राद्धकर्म च ।
व्रीह्याद्यैः कृष्टपच्यैर्वा धान्यैस्तु शुचिभिः सति! ।।४४।।

हे सति ! गृहस्थ को खेती न करते उगे हुए मुनि-धान्यसे अर्थात् तिन्नीसे (खेतीमें न बोने पर भी जो स्वयं उगता है उसे मुनिधान्य तथा तिन्नी कहते हैं ।) अथवा खेती कर के उगे हुए चावल आदि धान्य से श्राद्धकर्म करना चाहिए ।।४४।।

मांसं त्वापद्यपि क्वापि श्राद्धे देयं न कर्हिचित् ।
अहिंसाधर्मपरमा वैष्णवाः पितरो यतः ॥४५॥

श्राद्ध करते समय यदि कोई आपत्तिकाल आ जाय, तो भी कदापि मांस का निवेदन न करे। क्योंकि पितृगण हमेशा अहिंसा धर्मपरायण भगवान के वैष्णव भक्त होते हैं ॥४५॥

मद्यं मांसं च यस्मै स्यान्निवेद्यं यस्य चाग्रतः ।
स्याज्जीवहिंसा तं देवं देवीं चापि न मानयेत् ॥४६॥

जिन देवी-देवताओं को मद्यमांस का भोग लगता हो या उनकी प्रसन्नता के लिए किसी जीवप्राणी की हिंसा होती हो, उन देवी-देवताओं को कदापि न माने अर्थात् उनका अर्चन-पूजन न करे ॥४६॥

देशकालानुसारेण तीर्थानि च व्रतानि च ।
कुर्वीत स यथाशास्त्रं स्वाधिकारानुसारतः ॥४७॥

गृहस्थ को चाहिए कि वह अपने-अपने अधिकार तथा देशकाल के अनुसार विधि-विधानपूर्वक तीर्थाटन करे । तथा एकादशी इत्यादि व्रतों का भी अनुष्ठान करे ॥४७॥

पुण्यदेशे पुण्यकाले पुण्यपात्रे विशेषतः ।
पुण्यं कुर्वीत यत्किञ्चिद्भवेदक्षयमेव तत् ॥४८॥

क्योंकि, पवित्रदेश, पवित्रकाल तथा पवित्र सत्पात्र में जो विशेष पुण्यकर्म किये जाते हैं, उनका अवश्य अविनाशी फल मिलता है ॥४८॥

संपत्तिवान् गृहस्थ के धर्मों का वर्णन

आढ्यस्तु कारयेद्रम्यं दृढं श्रीविष्णुमन्दिरम् ।
वृत्तिदानेन पूजायाः प्रवाहं वर्तयेद्धरेः ॥४९॥

वैभव-संपत्ति से परिपूर्ण गृहस्थभक्त को चाहिए कि वह भगवान के नूतन-भव्य, सुंदर तथा सुदृढ़ विष्णु मंदिरों का निर्माण करे तथा धन-क्षेत्र अर्पण कर भगवद्पूजन के प्रवाह को अखंड़ितरूप से चालू रखे ।।४९।।

अहिंसान्वैष्णवान्यज्ञान्कुर्यात्प्रचुरदक्षिणान् ।
वापीकूपतडागादीन्विष्ण्वर्थांश्चापि कारयेत् ॥५०॥

जो धनी भगवद्भक्त है, वह अहिंसामय श्रीविष्णुयागों का आयोजन भी किया करे और उसमें उदारमन से अत्यधिक दक्षिणा भी प्रदान करे। वापि, (छोटी बावली) कुआँ तथा जलाशय आदि जलसंग्रह के साधनों द्वारा भगवान तथा भगवान के भक्तों के लिए व्यवस्था करे ।।५०।।

प्रचुराज्यसितैर्भोज्यैः साधून्विप्रांश्च तर्पयेत् ।
नावमन्येत तान् क्वापि सत्सु निष्कपटो भवेत् ॥५१॥

उस धनाढ्य गृहस्थ को चाहिए कि वह प्रचुरता से घृत-शक्करमिश्रित स्वादिष्ट भोजन द्वारा भगवान के भक्त-संत तथा ब्राह्मणों को तृप्त करे । कदापि उनका तिरस्कार न करे तथा सत्पुरुषों के साथ सदैव निष्कपट बनकर ही रहे ।।५१।।

नातिलोभी नातिकामी नातिक्रोधी न मत्सरी ।
नातिमानी भवेत्त्वपि दयां कुर्वीत देहिषु ॥५२॥

धनी गृहस्थ अतिलोभ, अतिकाम, अतिक्रोध, मत्सर (द्वेष) तथा अति अभिमान से सदैव दूर ही रहे तथा समस्त जीवप्राणिओं पर दयाभाव रखे ॥५२॥

आसन्नसम्बन्धहीना विधवाः स्त्रीरनापदि।
न स्पृशेद्बुद्धिपूर्वं तु गृहस्थोऽपि कदाचन ॥५३॥

ऐसे गृहस्थ आपत्तिकाल के बिना अपने निकटसंबंध के अतिरिक्त विधवा स्त्रियों का कभी स्पर्श न करे ॥५३॥

स्वस्य मात्रा भगिन्यापि दुहित्रा वा कदाचन ।
नैव तिष्ठेद्रहःस्थाने गृही चापदमन्तरा ॥५४॥

उसी प्रकार आपत्तिकाल के अतिरिक्त समय में गृहस्थ को अपनी माँ, बहन तथा पुत्री के साथ भी एकांत में नहीं रहना चाहिए ॥५४॥

तीर्थादावात्मनो घातमात्मनश्च परस्य वा ।
मुक्तयेऽपि न कुर्वीत धर्मनिष्ठः सदा भवेत् ॥५५॥

तथा तीर्थ इत्यादिक क्षेत्रों में मोक्ष की कामना से भी अपनी तथा दूसरों की हत्या नही करनी चाहिए और सदैव अपने जीवन में धर्मनिष्ठ बनकर ही रहना चाहिए ॥५५॥

सधवा-विधवा स्त्रियों के धर्मों का वर्णन

स्त्रीभिः सभर्तृकाभिश्च देववत्स्वपतिः सदा ।
सेव्यः पतिव्रताधर्मे स्थित्वा सन्त्यज्य चापलम् ॥५६॥

हे माता! जो सधवा-सौभाग्यवती स्त्री है, वह सदैव पतिव्रताधर्म का पालन करे । अपनी चंचलता का त्याग कर के पति को देव समझकर उसकी सेवा करे ॥५६॥

विधवाभिश्च नारीभिः पतिबुद्ध्या रमापतिः ।
सेवनीयः स्वदेहश्च कर्शनीयो व्रतादिभिः ॥५७॥

जो विधवा स्त्री है, वह लक्ष्मीपति भगवान नारायण को ही पति मानकर उनकी सेवा किया करे तथा चांद्रायण इत्यादि व्रत-अनुष्ठानों से अपने शरीर को कृश रखे ॥५७॥

नेक्षेत न स्पृशेत्क्वापि स्वसम्बन्धिजनेतरम् ।
विधवा नरमात्रं च त्यागवान् योषितं यथा ॥५८॥

जिस प्रकार त्यागी पुरुषों के लिए स्त्रियों को देखना तथा स्पर्श करना वर्जित है, उसी प्रकार उस विधवा स्त्री को भी अपने निकटसंबंध के अतिरिक्त किसी दूसरे पुरुष को देखना या स्पर्श करना सर्वथा वर्जित है ॥५८॥

पित्रा पुत्रादिना वापि विधवा तु रहःस्थले ।
आपत्कालं विना नैव सह तिष्ठेत्कदाचन ॥५९॥

तथा आपत्तिकाल के अतिरिक्त समय में विधवा स्त्री को चाहिए कि वह अपने पिता तथा पुत्र के साथ भी एकांत में न रहे ॥५९॥

वानप्रस्थाश्रमिओं के धर्मों का वर्णन

तृतीय आयुषो भागे गृहस्थो वनमाविशेत् ।
सस्त्रीकः स्त्री सुशीला चेदन्यथा त्वेकलः स्वयम् ॥६०॥

हे माता ! जो गृहस्थ है, उसे अपने जीवन के तीसरे चरण में वानप्रस्थाश्रम का स्वीकार करना चाहिए। यदि अपनी पत्नी सुशील स्वभाव की हो, तो उसे भी वन में साथ लेकर जाय, अन्यथा उसे अपने पुत्रों को सौंपकर अकेले ही वन में जाना ठिक है ।।६०।।

तत्र ग्रीष्मे पञ्चतपा उदवासश्च शैशिरे ।
आसारषाट् च वर्षासु भवेद्विष्णुपरायणः ॥६१॥

वन में जाकर वानप्रस्थी को चाहिए कि वह ग्रीष्मऋतु में भी पंचाग्निका (पंचाग्नि - चारों दिशाओं में चार अग्नि एवं ऊपर की एक सूर्याग्नि । तथा उपनिषद् के अनुसार स्वर्ग, पर्जन्य, पृथ्वी और योषित्, चारों ओर जलती हुई चार अग्नियों तथा ऊपर से सूर्य के ताप का सेवन करने का ग्रीष्म ऋतु में किया जानेवाला तप ।) सेवन करें । शितकाल में नियमितरूप से जल में निवास करे । वर्षाऋतु में बारीश की धाराओं को सहन कर के भगवान् श्रीविष्णु परायण जीवन को यापन करे ।।६१।।

वन्यैरेवाग्निहोत्रादि कुर्याद्धान्यफलादिभिः ।
अग्न्यर्थं च कुटीं कुर्यात्स्वयं तु बहिरावसेत् ॥६२॥

तथा वन में रहे नीवार (जमीन पर न बोने पर भी स्वयं जो उगता है वह धान्य) , फल तथा कंदमूल से अग्निहोत्रकर्म का अनुष्ठान करे । उस अग्नि के संरक्षण के लिए एक कुटिया बनवाये किन्तु स्वयं कुटिया के बाहर ही निवास करे ।।६२।।

अकृष्टपच्यैरन्नाद्यैर्जीवेत्स्वयमुपाहृतैः ।
यथाशक्ति वने स्थित्वा ततः सन्न्यासमाश्रयेत् ।।६३।।

वानप्रस्थी गृहस्थ को तिन्नीधान्यसे अपने जीवन का निर्वाह करना चाहिए तथा अपने शक्ति के अनुसार वन में रहे। उसके उपरांत संन्यासाश्रम का स्वीकार करे ।।६३।।

संन्यासाश्रम के सामान्य नियमों का वर्णन

कन्थामेकां च कौपीने द्वे तदाच्छादने च सः ।
बिभृयाद्वाससी दण्डं वैणवं च कमण्डलुम् ।।६४।।

हे माता ! जिस गृहस्थ ने संन्यासाश्रम में प्रवेश किया हो, वह अपने पास केवल एक गुदड़ी (कंथा- कँथारी) तथा दो कौपीन के साथ दो छाजन अर्थात् आच्छादन वस्त्र और काष्ठ से निर्मित दण्ड तथा कमंडलु रखे ।।६४।।

अष्टाक्षरं जपेन्नित्यं नारायणपरो यतिः ।
भक्तिमेव हरेः कुर्याज्ज्ञानविज्ञानसंयुतः ।।६५।।

भगवान् श्रीनारायण परक उस यति ने अष्टाक्षर मन्त्रका (**ॐ नमो नारायणाय**) जप करना चाहिए । तथा ज्ञान-

विज्ञान से युक्त होकर भगवान श्रीकृष्ण की नवधा भक्ति करनी चाहिये ।।६५।।

वर्षाकालं विनैकत्र न वसेत्स त्वनापदि ।
शुचिविप्रगृहे भैक्षं कुर्यान्नित्यं सकृन्मितम् ।।६६।।

संकटकाल तथा वर्षाऋतु के अतिरिक्त संन्यासी को किसी एक ही स्थान पर निवास नहीं करना चाहिए । किसी पवित्र ब्राह्मण के घर से एक बार और वह भी बहुत कम भिक्षा ग्रहण करनी चाहिये ।।६६।।

एकादश्यादीनि हरेर्व्रतानि विधिना चरेत्।
पालयेद्ब्रह्मचर्यं च जितात्मा च जितेन्द्रियः ।।६७।।

वह संन्यासी भगवान श्रीहरि के एकादशी जैसे व्रतों का विधिविधान से अनुष्ठान करे तथा ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करते हुए मन और इन्द्रियों को जितकर अपने जीवन को व्यतित करे ।।६७।।

कलियुग में संन्यास का निषेध होने से अन्य व्यवस्था का निरूपण

वानप्रस्थश्च सन्न्यासो निषिद्धौ भवतः कलौ ।
अतो विरक्तो वर्णी वा गृही त्रैवर्णिकोऽपि च ।।६८।।
वासुदेवीं महादीक्षां गृहीत्वा वैष्णवो भवेत् ।
स्वाश्रमस्थो ब्रह्मचर्यं पालयन्स हरिं भजेत् ।।६९।।

हे माता ! कलियुग में संन्यास तथा वानप्रस्थ, इन दोनों आश्रमों का निषेध है । अतः संसार से विरक्त ब्रह्मचारी

को तथा तीनों वर्णों के गृहस्थ को चाहिए कि वह भगवान श्रीवासुदेव की महादीक्षा ग्रहण करके वैष्णव भगवद्‌भक्त बने तथा अपने आश्रम के अनुसार अष्टप्रकार से ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करे और भगवान् श्रीकृष्ण की भक्ति भी किया करे ।।६८-६९।।

त्यक्त्वा वा स्वगृहमसौ साधुमण्डलमध्यगः ।
साधुशीलो भजेत्कृष्णं यथा प्राग्भरतो जडः ।।७०।।

अथवा, अपने घर का त्यागकर संतों के मंडल में जाय और वहाँ भागवती दीक्षा ग्रहण कर के संतों के सद्‌गुणों से युक्त होकर फिर भगवान ऋषभदेव के पुत्र जड़भरत की भाँति भगवान श्रीकृष्ण की भक्ति ही किया करे ।।७०।।

नेक्षेत न स्पृशेद्बुद्ध्या काष्टजामपि योषितम् ।
हिरण्यादि धनं जह्यात्त्यागी निजहितोद्यतः ।।७१।।

अपना हित चाहनेवाले त्यागी को देवी की प्रतिमा के अतिरिक्त किसी स्त्री के चित्र तथा काष्ठ की प्रतिमा को भी जान-बूझकर देखना तथा स्पर्श नहीं करना चाहिए ।।७१।।

स्त्रीस्त्रैणसङ्ग एको हि मुक्तानामपि बन्धकृत् ।
हरिमेकं विनाऽस्तीति सर्वथा तं परित्यजेत् ।।७२।।

स्त्री तथा स्त्रियों में आसक्त किसी व्यक्ति का संग तो भगवान के अतिरिक्त, चाहे कितना भी बड़ा मुक्तात्मा क्यों न हो, सभी के लिए बंधनकारी होता है । अतः सत्पुरुषों को चाहिए कि वे उनके संगका सदैव त्याग करें ।।७२।।

ज्ञानं भक्तिस्तपो योगस्त्यागः सच्छास्त्रचिन्तनम्।
इत्यादयो गुणा व्यर्था भवन्ति स्त्रीप्रसङ्गतः ॥७३॥

ज्ञान, भक्ति, योग, तपस्या, त्याग एवं सच्छास्त्रों का किया हुआ मनन-चिंतन, इन सारे गुणों को स्त्रियों का संग व्यर्थ बना देता है ॥७३॥

कृष्णाहिभ्य इव स्त्रीभ्यो मुमुक्षुर्बिभियात्ततः ।
समाधिनिष्ठां प्राप्तोऽपि पुमांस्ता दूरतस्त्यजेत् ॥७४॥

इसी कारण से कल्याण की कामना करनेवाला भक्त काले सर्प की भाँति स्त्री से ड़रता रहे । और तो और, यदि कोई समाधिनिष्ठ सत्पुरुष हो, तो वह भी स्त्रीसंग से दूर ही रहे ॥७४॥

कामं लोभं क्रुधं मानं ग्राम्यस्नेहं रसैषणाम् ।
द्वाराण्येव षडेतानि निरयस्येति सन्त्यजेत् ॥७५॥

काम, क्रोध, लोभ, मान, भगवद्भक्तों के अतिरिक्त किसी दूसरे में स्नेह तथा रसास्वाद ये छह नरक के द्वार माने जाते हैं । अतः इन सभी का त्याग करे ॥७५॥

ब्रह्मचर्यं सोऽष्टविधं रक्षंस्त्यागी जितेन्द्रियः ।
हरेर्नवविधां भक्तिं प्रीत्या कुर्वीत सर्वदा ॥७६॥

जितेन्द्रिय त्यागी भक्त को चाहिए कि वह अपने ब्रह्मचर्यव्रत का अष्टप्रकार से पालन करे और सदैव बड़े भाव से भगवान् श्रीहरि की नवधा भक्ति किया करे ॥७६॥

विहीनां सेवया विष्णोरसौ मुक्तिं चतुर्विधाम् ।
अपि नेच्छेच्च कैवल्यं तुच्छं स्वर्गादि किं पुनः ॥७७॥

जो भगवान् के एकनिष्ठ भक्त होते हैं , वे तो भगवत्सेवाके अतिरिक्त चार प्रकार की मुक्ति की भी कामना नहीं करते । तो फिर तुच्छ स्वर्गसुख की चाहना वे क्यों करेंगे ? ॥७७॥

विष्णुसेवेतराशेषवासनोन्मूलनोद्यतः।
अलब्धात्मप्रवेशावकाशोऽन्तःशत्रुभिश्च सः ॥७८॥

जो भगवान् की सेवा के अतिरिक्त अन्य वासनाओं का नाश करनेमें तत्पर रहते हैं, ऐसे संतपुरुषों को चाहिए कि वे काम, क्रोध इत्यादि अंतःशत्रुओं का अपने हृदयकमल में प्रवेश न हो, इस प्रकार से सावधान होकर रहे ॥७८॥

देशकालक्रियाशास्त्रसङ्गादीनसतस्त्यजन् ।
सतस्तांश्च श्रयन्नित्यं वर्तेताध्वनि सच्छ्रिते ॥७९॥

उन सत्पुरुषों को अशुभ-देश, अशुभ-काल, अशुभ-क्रिया, अशुभ-शास्त्र, अशुभ-संग, अशुभ-दीक्षा, अशुभ-मंत्र तथा अशुभ-ध्यान का त्याग करना चाहिए । और शुभ देशकाल इत्यादि का ही सेवन करना चाहिए । तथा महापुरुषों ने जिस सन्मार्ग का आचरण किया हो, उसी मार्ग पर चलना चाहिए ॥७९॥

सर्वेष्वेतेषु धर्मेषु यस्य यस्य च्युतिर्भवेत् ।
वर्णाश्रमी यथाशास्त्रं कुर्यात्तत्तस्य निष्कृतिम् ॥८०॥

हे माता ! मैंने बतलाये हुए इन धर्मों का यदि कोई मनुष्य उल्लंघन करता है, तो वर्णाश्रमी सभी मनुष्यों को विधिविधान से उसका प्रायश्चित्त करना अनिवार्य है ।।८०।।

इत्थं मया ते जनयित्रि ! धर्मो
वर्णाश्रमाणां विहितश्चतुर्णाम् ।
पृथक् पृथक्साधु निरूपितो वै
ज्ञानस्य वक्ष्याम्यथ लक्षणं ते ।।८१।।

हे जननी ! इस प्रकार चार वर्ण तथा आश्रमों के धर्म-नियमों का शास्त्र विहित पृथक्-पृथक् स्पष्टरूप से निरूपण करके मैंने आपको सुनाया। अभी इसके पश्चात् मैं आपको ज्ञान के लक्षण बताता हूँ ।।८१।।

इति श्रीसत्सङ्गिजीवने नारायणचरित्रे धर्मशास्त्रे प्रथमप्रकरणे हरिगीतायां वर्णाश्रमधर्मनिरूपणनामा द्वितीयोऽध्यायः ।।२।।

इस प्रकार श्रीनारायणचरित्र और धर्मशास्त्ररूप
श्रीसत्संगिजीवन के प्रथम प्रकरणान्तर्गत
श्रीहरिगीता में वर्णाश्रमधर्मों का निरूपण करके
दूसरा अध्याय समाप्त हुआ ।।२।।

अध्याय - ३

आत्मा के स्वरूप-ज्ञान का वर्णन

श्रीहरिरुवाच -

यद्वस्तु यादृशं तस्य तादृक्त्वेन प्रमाणतः ।
वेदनं यत्तदुदितं मातर्ज्ञानस्य लक्षणम् ॥१॥
तच्च ज्ञानं द्विधा प्रोक्तं तत्रैकं ज्ञानमात्मनः ।
परमात्मस्वरूपस्य ज्ञानं चेत्यपरं मतम् ॥२॥

बालस्वरूप श्रीहरिकृष्णने कहा, हे माता! जो वस्तु-पदार्थ जैसा हो उसे प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान तथा शब्दप्रमाण से वैसे ही समझ लेना ही "ज्ञान" कहलाता है । वह ज्ञान दो प्रकार का है । एक आत्मस्वरूप का तथा दूसरा परमात्मस्वरूप का ॥१-२॥

आत्मा जीव इह प्रोक्तो व्याप्य सर्वं वपुः स्थितः ।
बाह्यान्तःकरणानां तद्देवानां च प्रकाशकः ॥३॥

हे माता! यहाँ आत्मा को ही "जीव" के नामसे सम्बोधित किया है। वह जीवात्मा जो अपनी ज्ञानशक्ति से समूचे शरीर में व्याप्त है तथा आँख, कान इत्यादि बाह्य इन्द्रियों को एवं मन, बुद्धि आदि आंतरिक इन्द्रियों को तथा उनके सूर्य आदि देवताओं को भी प्रकाशित करता है ॥३॥

जाग्रदादिष्ववस्थासु स्थूलादिषु वपुष्षु च ।
बद्धस्तादात्म्यसम्बन्धाद्वस्तुतस्तद्विलक्षणः ॥४॥

जाग्रत, स्वप्न एवं सुषुप्ति तीन अवस्थाएँ तथा स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण इन तीन शरीरों में यह जीवात्मा तादात्म्यभाव से संबद्ध होता है, किन्तु वस्तुतः इन तीन अवस्थाओं से तथा तीन शरीरों से यह सर्वथा भिन्न है ॥४॥

यथैव गोलकं लौहं तादात्म्येन धनञ्जयः ।
व्याप्य स्थितोऽपि तद्भिन्नलक्षणोऽस्ति तथा ह्यसौ ॥५॥

लोहेके गोलाकार पिंड में अग्नि तादात्म्यभाव से व्याप्त होने पर उसकी एकरूपता तो दिखती है,परंतु वस्तुतः उसके गुण-धर्मों से वह अग्नि पृथक् है । उसी प्रकार जीवात्मा भी शरीर तथा अवस्थारूप जड वस्तु-पदार्थों से सर्वथा पृथक् है ॥५॥

न वै विकुरुते देहे विकारान्प्राप्नुवत्यपि ।
तथा नश्यति देहेऽपि नासौ नश्यति कर्हिचित् ॥६॥

शरीर में अनेक प्रकार की बाल-यौवन इत्यादि विकृतियाँ आने पर भी उसमें रहे जीवात्मा को कोई विकृति बाधित नहीं कर सकती । तभी तो इस देहका नाश संभव है पर जीवात्मा का नाश कभी संभव नहीं , इसलिए उसे अविनाशी कहा गया है ॥६॥

सच्चिद्रूपोऽक्षरः सूक्ष्मो दुर्ज्ञेयश्च स वर्तते ।
इत्थं यदात्मनो ज्ञानमात्मज्ञानं तदुच्यते ॥७॥

जो सत्यस्वरूप, चैतन्यरूप तथा अविनाशी है । अणु की भाँति सूक्ष्म है, इसलिए तो स्थूल दृष्टि से किसी को

दिखाई नहीं देता। यदि उसे जानना-समझना है, तो केवल भगवत्कृपासे ही उसे जाना जा सकता है । इस प्रकार से उस जीवात्मा को भलीभाँति जानना-समजना, इसे ही "**ज्ञान**" कहते हैं ॥७॥

परमात्मा के स्वरूप-ज्ञानका वर्णन

परमात्मस्वरू पस्य ज़ानं ते कथयाम्यथ ।
श्रीकृष्णो यः परं ब्रह्म परमात्मा स कीर्तितः ॥८॥

हे माता ! अब मैं आपको परमात्मा के स्वरूप का ज्ञान बतलाता हूँ । स्वरूप, स्वभाव, गुण तथा विभूति आदि के रूपमें अक्षरब्रह्मतत्त्वों से भी जो सर्वोत्कृष्ट परब्रह्म है, वे ही परमात्मा भगवान् श्रीकृष्ण है ॥८॥

प्राकृतगुणो विष्णुर्निर्गुणश्चेश्वरेश्वरः ।
नारायणश्च भगवान्वासुदेवो य उच्यते ॥९॥

वे परमात्मा सत्त्व, रज तथा तम इन प्राकृत गुणों से विरहित होने पर "**निर्गुण**" कहलाते हैं । इस जड एवं चैतन्यमय सृष्टि में अंतर्यामीरूप से निवास करने पर वे "**विष्णु**" के नाम से जाने जाते हैं । प्रधान पुरुष इत्यादि ईश्वरों के भी ईश्वर होने पर इन्हें "**परमेश्वर**" की संज्ञा प्राप्त होती हैं । मुक्तात्मा तथा बद्धात्मा जीवों का अंदर-बाहर से संचालन करने से वे "**नारायण**" नाम से प्रसिद्ध हैं । ऐश्वर्य आदि छ भगों के स्वामी होने से वे "**भगवान्**" कहलाते हैं

तथा अंतः करण को प्रकाशित करते हैं इसलिए इनको "**वासुदेव**" भी कहते हैं ।।९।।

साक्षात्सम्बन्धतो यस्य कर्ता श्रद्धा सुखं तथा ।
ज्ञानं स्थानं च द्रव्यादि गुण्यपि स्याद्धि निर्गुणम् ।।१०।।

इस लोक में कर्ता पुरुष अर्थात् क्रियाएँ करनेवाला पुरुष तथा श्रद्धा, सुख, ज्ञान, स्थान एवं द्रव्य, ये सभी माया के तीनों गुणों से युक्त होते हैं फिर भी, यदि इन सबको परमात्मा का साक्षात् संबंध प्राप्त हो जाय, तो ये भी तत्काल निर्गुण बन जाते हैं ।।१०।।

स्वतन्त्रः स्वप्रकाशश्च सर्वकारणकारणम् ।
ब्रह्मभूतैरप्युपास्यः कोटिसूर्यादिभास्वरः ।।११।।

वे परमात्मा स्वतंत्र हैं, स्वयंप्रकाश हैं, जगत् के मूल कारण प्रकृति और पुरुष उनके भी वे कारण हैं, ब्रह्मभाव को प्राप्त हुए मुक्तात्मा भी उनकी उपासना करते रहते हैं तथा वे करोड़ो सूर्य की भाँति तेजोमय हैं ।।११।।

प्रधानाद्याष्टावरणावृतानेकाण्डकोटयः।
यत्राणुवत्स्थिता ब्रह्माक्षरं तद्धाम यस्य च ।।१२।।

प्रधान इत्यादि अष्ट आवरणों से संपन्न अनंत कोटी ब्रह्मांडों के समुदाय जिस अक्षरब्रह्म में अणुकी भाँति उड़ते-फिरते हैं, उसी अक्षरब्रह्म को इस परमात्मा का "**धाम**" कहा जाता है ।।१२।।

दिव्यरूपोऽक्षरात्मा च श्रुतो यश्चाक्षरात्परः ।
अन्तर्यामी च सर्वेषामात्मनां योऽच्युतो हरिः ॥१३॥

श्रुति-स्मृतियाँ जिनको सदैव साकार दिव्यस्वरूप से प्रतिपादन करती है । वे अक्षरब्रह्म के भी आत्मा हैं । अतः उनको उससे भी पर स्वरूप, स्वभाव इत्यादि के माध्यम से उत्कृष्ट माना गया हैं । समस्त जीवप्राणिओं के तथा विराट् आदि ईश्वरों के भी वे अंतर्यामी हैं । स्वरूप, स्वभाव, गुण, विभूति तथा ऐश्वर्य, इन तत्त्वों से वे कभी च्युत नहीं होते इसलिए उन्हें "अच्युत" कहा जाता हैं । तथा जो अपने केवल स्मरण से ही समस्त भक्तों के पापों का एवं दुःखों का हरण करते हैं, अथवा यज्ञीयभाग को जो हर लेते हैं अथवा जो हरित् वर्ण के हैं उन्हें "हरि" के नाम से भी जाना जाता हैं ॥१३॥

कालो माया पुमान् यस्य महत्तत्त्वादयस्तथा ।
शक्तयः सन्त्येकमेवाद्वितीयं ब्रह्म यः प्रभुः ॥१४॥

वह परमात्मा एक ही हैं, अद्वितीय हैं, उनके समान दूसरा कोई नहीं । काल, माया, पुरुष तथा महत्तत्त्व, इत्यादि सभी इस परमात्मा की ही शक्तियाँ हैं । इन सबका वे संचालन करते रहते हैं, अतः वे सब के स्वामी हैं ॥१४॥

श्रेयसे भुवि लोकानां योऽवतारान्बिभर्ति च ।
अनेककल्याणगुणः स ज्ञेयः पुरुषोत्तमः ॥१५॥

वह परमात्मा ही अनंत जीवों के कल्याण हेतु राम-कृष्ण इत्यादि अवतारों को धारण करते हैं । सत्य, शौच, दया आदि अनेकों कल्याणकारी सद्‌गुणों के वह परमात्मा निधि हैं तथा क्षर एवं अक्षर से भी उत्तम होने पर उन्हें "**पुरुषोत्तम**" कहा जाता हैं ।।१५।।

सृष्टि के क्रम का वर्णन ।

श्रीकृष्ण एषोऽक्षरपूरुषात्मना
स्वशक्तिमूलप्रकृतिं समीक्षते ।
सिसृक्षुरेवागणिताण्डगोलकान्
धत्ते च सा गर्भमथेक्षणात्मकम् ।।१६।।

हे माता ! अनंतकोटी ब्रह्मांडों का सर्जन हो, इस कामना से जब वे परमात्मा भगवान श्रीकृष्ण अक्षरपुरुष के माध्यम से अपनी शक्ति-मूलप्रकृति को देखते हैं । तब वह मूलप्रकृति भगवान के इस दृष्टिरूप गर्भ को धारण करती है ।।१६।।

सूते ततः सा सहपुरुषाणि प्रधानतत्त्वानि च कोटिशोऽथ ।
तत्पूरुषात्मप्रभुवीक्षितेभ्यस्तेभ्यो जगत्कारणतत्त्वसर्गः ।।१७।।

तदुपरांत वह मूलप्रकृति पुरुष के साथ करोड़ो प्रधान नामक तत्त्वों को जन्म देती है । पुरुषस्वरूप से रहे और परमात्मा की दृष्टि को प्राप्त करने पर वे प्रधान पुरुष जगत् की उत्पत्ति के कारणभूत चौबीस तत्त्वों का निर्माण करते हैं ।।१७।।

ब्रह्माण्डानि बहूनीत्थं सम्भवन्ति हरीच्छया ।
तत्रैकस्यानुक्रमेण सम्भवं कथयामि ते ।।१८।।

इस प्रकार भगवान् श्रीहरि की इच्छा से अनेकों ब्रह्मांड़ों का सर्जन होता हैं । उसमें एक ब्रह्मांड़ की उत्पत्ति का क्रम मैं आपको बतलाता हूँ ।।१८।।

एकस्याप्युद्भवं वक्तुं विस्तरेण न शक्यते ।
अतः सङ्क्षेपतो मातस्तदुत्पत्तिर्मयोच्यते ।।१९।।

वैसे तो एक ही ब्रह्मांड़ की सृष्टि का क्रम विस्तार से कहना बड़ा कठिन है । फिर भी ब्रह्मांड़ के सर्जन का क्रम मैं संक्षिप्तरूप से यहाँ कहता हूँ ।।१९।।

प्रधानतत्त्वात्तस्मात्तु पुंदृष्टात्त्रिगुणात्मकात् ।
जगदङ्कुररूपं हि महत्तत्त्वं प्रजायते ।।२०।।

हे माता ! परमात्मा की संकल्परूप दृष्टि को प्राप्त करने के पश्चात् त्रिगुणस्वरूप प्रधान तत्त्व के द्वारा ही जगत् के अंकुररूप महत्तत्त्व की उत्पत्ति होती है ।।२०।।

प्रधानेनावृतात्तस्माद्वासुदेवेच्छया सति ! ।
महत्तत्त्वादहङ्कारस्त्रिविधो जायते ततः ।।२१।।

हे साध्वि! भगवान् श्रीवासुदेव की इच्छा से प्रधानरूप महत्तत्त्व के द्वारा ही तीन प्रकार के अहंकार की भी उत्पत्ति होती है ।।२१।।

सात्त्विको राजसश्चैव तामसश्चेति स त्रिधा ।
यथा प्रधानेन महान्महता स तथावृतः ।।२२।।

सात्त्विक, राजस तथा तामस ये तीनों अहंकार के ही प्रतीक हैं । जिस प्रकार महत्तत्त्व प्रधानस्वरूप है, उसी प्रकार अहंकार भी महत्तत्त्वस्वरूप है ।।२२।।

अहङ्कारात्तामसाच्च वासुदेवेच्छयैव हि ।
शब्दो भवति तस्मात् खं जायते शब्दमात्रकम् ।।२३।।
अहङ्कारावृतात्तस्मादाकाशाच्छब्दमात्रकात् ।
स्पर्श उत्पद्यते स्पर्शाद्वायुश्च स्पर्शमात्रकः ।।२४।।
आकाशेनाऽऽवृताद्वायो रूपमुत्पद्यते ततः ।
तस्मात्तेजो रूपमात्रं जायते वायुनाऽऽवृत्तम् ।।२५।।
तेजसश्च रसस्तस्मादापस्तु रसमात्रिकाः ।
उत्पद्यन्ते च ताः सन्ति वेष्टितास्तेन तेजसा ।।२६।।
अद्भ्यो गन्धस्ततः पृथ्वी जायते गन्धमात्रिका ।
अद्भिः संवेष्टिता पृथ्वी विशेषाख्या च कथ्यते ।।२७।।

तदनन्तर भगवान् श्रीवासुदेव की इच्छा से तामस अहंकार से शब्द की उत्पत्ति होती है। उस शब्द से शब्द जिसकी तन्मात्रा है, ऐसे आकाश की उत्पत्ति होती है । जिसका तामस अहंकार मूलकारण है तथा शब्द जिसकी तन्मात्रा है उस आकाश से स्पर्श की उत्पत्ति होती है । उस स्पर्श से स्पर्श जिसकी तन्मात्रा है, ऐसे वायु की उत्पत्ति होती है । आकाश से आवृत्त वायु से रूप की उत्पत्ति होती है । तथा रूप जिसकी तन्मात्रा है, ऐसे तेज की उत्पत्ति होती है । तेज से रस की उत्पत्ति होती है । उस तेज से आवृत्त

रस जिसकी तन्मात्रा है, ऐसे जल का निर्माण होता है । उस जल से गंध की उत्पत्ति होती है । गंध से गंध जिसकी तन्मात्रा है, ऐसी पृथ्वी की उत्पत्ति होती है । उस पृथ्वी को "**विशेष**" इस नामसे भी जाना जाता है ।।२३-२७।।

आकाशादीनि पञ्चात्र महाभूताभिधानि च ।
शब्दादयश्च कथ्यन्ते पञ्च तन्मात्रिका इति ।।२८।।

आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी इन पाँचों तत्त्वों को पंचमहाभूत के नाम से भी जानते हैं । तथा इसके कारणस्वरूप शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गंध इन पाँचों को "**तन्मात्रा**" कहते हैं ।।२८।।

अहङ्काराद्राजसात्तु पञ्च ज्ञानेन्द्रियाणि च ।
पञ्च कर्मेन्द्रियाण्यम्ब ! प्राणो बुद्धिश्च जायते ।।२९।।

हे माता ! दूसरे राजस अहंकार से पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कमेन्द्रियाँ, पंचप्राण तथा बुद्धि की उत्पत्ति होती हैं ।।२९।।

श्रोत्रं त्वक् चाक्षि जिह्वा च घ्राणो ज्ञानेन्द्रियाण्यथ ।
वाग् दोः पाद उपस्थश्च पायुः कर्मेन्द्रियाणि च ।।३०।।

इनमें श्रोत्र (कान), त्वक् (त्वचा), चक्षु (आँख), रसना (जिह्वा), घ्राण (नाक) ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं । तथा वाक् (वाणी), पाणि (हाथ), पाद (पैर), पायु (गुदा), और उपस्थ (शिश्न) ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं ।।३०।।

अहङ्कारात्सात्त्विकाच्च करणानां तु देवताः ।
बाह्यानामान्तराणां च प्रजायन्ते मनस्तथा ॥३१॥

तीसरा जो सात्त्विक अहंकार है, इससे बाह्य तथा आंतरिक इन्द्रियों के देवता एवं मन की उत्पत्ति होती है ॥३१॥

दिग्वातार्कप्रचेतोऽश्विवह्नीन्द्रोपेन्द्रमित्रकाः ।
चन्द्रो ब्रह्मा क्षेत्रविच्च रुद्रश्चेत्यधिदेवताः ॥३२॥

श्रोत्र इन्द्रिय के देवता दिग्पाल हैं, उसी प्रकार त्वचा के वायुदेव, चक्षु के सूर्य, जिह्वा के वरुणदेव, घ्राण के अश्विनीकुमार, वाणी के अग्निदेव, हाथों के इन्द्र, पाद के उपेन्द्र, गुदा के मित्रदेव एवं शिश्न के कश्यप प्रजापति देवता कहलाते हैं । तथा मन के चन्द्रमा, बुद्धि के ब्रह्मा, चित्त के वासुदेव तथा अहंकार के देवता रुद्र माने जाते हैं ॥३२॥

विराट् पुरुष की उत्पत्ति का वर्णन

एते सर्वे तत्त्वसंज्ञा देवा भगवदिच्छया ।
संहत्यैव विराड्देहं स्वस्वांशै रचयन्ति हि ॥३३॥

महत्तत्त्व आदि चौबीस तत्त्व जिनके स्वरूप कहलाते हैं ऐसे सभी देवता मिलकर भगवान् के संकल्प से अपने-अपने अंशों से "**विराट्**" नामक पुरुष का निर्माण करते हैं ॥३३॥

तत्स्थ आत्मा तु वैराजः पुरुषः प्रोक्त ईश्वरः ।
स्वाङ्गोत्पन्नाम्बुशयनाद्यश्च नारायणः स्मृतः ॥३४॥

उस विराट् शरीर में आत्मा के रूप में रहे वैराजपुरुष को ही "**ईश्वर**" कहते हैं । उस विराट्पुरुष ने अपने ही शरीर से उत्पन्न हुए "**नार**" नामक गर्भोदक जल में शयन किया । इसलिए वे "**नारायण**" कहलाए ।।३४।।

तन्नाभिकमलाद्ब्रह्मा जायते राजसः सति ! ।
जीवांस्तदात्मना सर्वाञ्छ्रीकृष्णः सृजतीश्वरः ।।३५।।

हे सति ! उस विराट् नारायण के नाभिकमल से रजोगुणप्रधान ब्रह्माजी की उत्पत्ति होती है । भगवान् श्रीकृष्ण ही उस ब्रह्माजी के द्वारा इस समग्र जीवसृष्टि का सर्जन करवाते हैं ।।३५।।

प्रजेशांश्च मनून्देवानृषीन्पितॄन् पृथक् पृथक् ।
गन्धर्वांश्चारणान्सिद्धान् यक्षान्विद्याधरासुरान् ।।३६।।
किंपुरुषांश्चाप्सरसः किन्नरानुरगांस्तथा ।
मातॄः पिशाचान् रक्षांसि भूतान् प्रेतान्विनायकान् ।। ।।३७।।
वेतालोन्मादकूष्माण्डान् वृद्धबालग्रहांस्तथा ।
पशून्मृगान् खगान्वृक्षान् पर्वतांश्च सरीसृपान् ।।३८।।
स्थावरा जङ्गमा येऽन्ये भूवारिगगनौकसः ।
सर्वांस्तांश्च यथाकर्मगुणदेहान् सृजत्यसौ ।।३९।।

वह जीवसृष्टि इस प्रकार है । समस्त प्रजापति, मनु, देवता, ऋषि, पितृ, गंधर्व, चारण, सिद्ध, यक्ष, विद्याधर, असुर, किंपुरुष, अप्सरा, किन्नर, सर्प, मातृगण, पिशाच, राक्षस, भूत, प्रेत, विनायक, वैताल, उन्माद, वृद्धग्रह, बालग्रह,

पशु, मृग, पक्षी, वृक्ष, पर्वत, जमीन पर रेंगनेवाले प्राणी, नाना प्रकार के स्थावर जंगम प्राणी, पृथ्वी, जल, तथा आकाश में घूमनेवाले अनंत जीवप्राणी, इन सभी का अपने-अपने गुण तथा कर्म के अनुसार भगवान् श्रीकृष्ण ही ब्रह्माजी के माध्यम से सर्जन करवाते हैं ।।३६-३९।।

शुद्धसत्त्वा मिश्रसत्त्वा राजसास्तामसास्तथा ।
तेषु मिश्रगुणाश्चैके सन्ति केचिच्च निर्गुणाः ।।४०।।

इस जीवसृष्टि में कई जीव शुद्ध सत्त्वगुण प्रधान हैं, तो कई मिश्र सत्त्वगुण प्रधान हैं । कुछ राजसगुण प्रधान तो कुछ तमोगुण प्रधान हैं । इनमें कितने तो मिश्रगुण प्रधान भी जीव होते हैं । तथा इन सबसे पृथक् ऐसे भी हैं जो तीनों गुणों से रहित "**निर्गुण**" भी कहलाते हैं ।।४०।।

गुणस्वभावानुरूपं पुण्यं वाऽघं च मिश्रितम् ।
कर्म ते कुर्वते जीवाः कृष्णभक्तिं तु निर्गुणाः ।।४१।।

ये सभी जीवप्राणी अपने-अपने गुण, कर्म तथा स्वभाव के अनुसार पुण्यकर्म, पापकर्म तथा पापपुण्यमिश्रित कर्म करते हैं । तथा जो निर्गुण हैं, वे भगवान् श्रीकृष्ण की भक्तिरूप कर्म किया करते हैं ।।४१।।

एवं स भगवान्मातर्ब्रह्मात्मा सृजति प्रजाः ।
पाति ता विष्णुरूपश्च शिवात्मा संहरत्यपि ।।४२।।

इस प्रकार स्वयं भगवान् नारायण ही ब्रह्माजी के रूप में इस जीवसृष्टि की उत्पत्ति करते हैं । श्रीविष्णु के रूप

में इस सृष्टि का पालन करते हैं तथा वे ही श्रीशिवजी के रूपमें रहकर इस सृष्टि का संहार करते हैं ॥४२॥

असौ जीवेषु सर्वेषु प्रविश्य पुरुषात्मना ।
यथाकर्म फलं दत्ते तेभ्यः साम्यमुपाश्रितः ॥४३॥

वे भगवान् अक्षरपुरुष के रूप रहकर समस्त सृष्टि में प्रवेश करते हैं तथा सभी जीवों को उनके कर्मों के अनुसार समानता से कर्मफल प्रदान करते हैं ॥४३॥

स हरिस्त्वक्षरस्याथ प्रकृतेः पुरुषस्य च ।
प्रधानपुरुषाणां च महदादिगणस्य च ॥४४॥

वे भगवान् श्रीहरि अक्षरब्रह्म के नियामक हैं तथा प्रधानपुरुष, प्रकृतिपुरुष एवं महत्तत्त्व आदि चौबीस तत्त्वों के भी वे ही नियंता हैं ॥४४॥

कालस्य स्थूलसूक्ष्मस्य चरतोऽण्डे च तद्बहिः ।
एतेषां कार्यभूतस्य वैराजस्य महामते! ॥४५॥

हे महाबुद्धिशाली माँ! दिन, महिने तथा वर्ष इत्यादि स्थूलरूप से एवं परार्ध और द्विपरार्ध इत्यादि सूक्ष्मरूप से इस अखिलब्रह्मांड के अंदर-बाहर विचरण करनेवाले काल के तथा महत्तत्त्व आदि से निर्माण हुए विराट् पुरुष के भी वे भगवान् श्रीकृष्ण ही नियामक हैं ॥४५॥

तज्जातानां प्रजेशानां ब्रह्मादीनां च सर्वशः ।
नियन्ता ह्येक एवास्ति सम्राट् खण्डभुजामिव ॥४६॥

जिस प्रकार कोई चक्रवर्ती सम्राट् छोटे-छोटे देशखंडों का नियामक होता है, उसी प्रकार उस विराट् से उत्पन्न हुए ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव के तथा प्रजापति आदि समस्त देवताओं के भी वे परमात्मा नियंता हैं ।।४६।।

एषां यत्राधिकारे ये जगतस्तेन योजिताः ।
ते सावधानास्तद्भीतास्तदाज्ञायां सदा स्थिताः ।।४७।।

भगवान् ने इस सृष्टि के निर्वाहकार्य में जिसको जो-जो अधिकार दिए हैं । वे सभी उन्हीं परमात्मा के भय से सावधान होकर निरन्तररूप से उनकी आज्ञा में रहते उन अधिकारों का पालन करते हैं ।।४७।।

एवं हि मातः ! सर्वेऽपि परतन्त्रा भवन्ति हि ।
कृष्ण एकः स्वतन्त्रोऽस्ति सर्वसेव्यस्ततस्तु सः ।।४८।।

हे माता ! सभी जीवमात्र परतंत्र हैं किन्तु केवल भगवान् श्रीकृष्ण ही एक स्वतंत्र है । अतः सभी जीवप्राणी के लिए केवल वे ही परमात्मा उपासना-आराधना करने योग्य हैं ।।४८।।

परमात्मस्वरूपस्य ज्ञानमित्थं प्रकीर्तितम् ।
प्राप्तेन सद्गुरोर्येन ज्ञातव्यं नावशिष्यते ।।४९।।

इस प्रकार परमात्मा के स्वरूप का ज्ञान मैंने आपको बतलाया । यदि किसी सद्गुरु के द्वारा यह ज्ञान साधक को प्राप्त हो जाय, फिर उसे दूसरा कुछ़ जानने-समझने के लिए शेष नहीं रहता ।।४९।।

य इत्थमात्मानमथात्मनाथं सतां प्रसङ्गादवगत्य सम्यक् ।
करोति भक्तिं भवबन्धहर्तुः श्रीवासुदेवस्य स मुक्त उक्तः ॥५०॥

हे माँ ! संत-महापुरुषों की संगति से जो मनुष्य इस प्रकार आत्मा-परमात्मा के स्वरूप को यथार्थ जानकर भगवान श्रीवासुदेव की भक्ति करता रहता है, अंततो गत्वा, वही "**मुक्त**" कहलाता है ॥५०॥

इति श्रीसत्सङ्गिजीवने नारायणचरित्रे धर्मशास्त्रे प्रथमप्रकरणे हरिगीतायां ज्ञानस्वरूपनिरूपणनामा तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

इस प्रकार श्रीनारायणचरित्र और धर्मशास्त्ररूप श्रीसत्संगिजीवन के प्रथम प्रकरणान्तर्गत श्रीहरिगीता में ज्ञानस्वरूप का निरूपण करके तीसरा अध्याय समाप्त हुआ ॥३॥

अध्याय - ४

वैराग्य के लक्षणों का निरूपण

श्रीहरिरुवाच -

वैराग्यस्य स्वरूपं ते कथयाम्यथ मानदे ! ।
भगवन्तं विनाऽन्यत्र रागाभावस्तदुच्यते ॥१॥

बालस्वरूप श्रीहरिकृष्ण ने कहा, यथोचित सभी को सम्मान देनेवाली हे माता! अब मैं आपको वैराग्य का स्वरूप बतलाता हूँ। भगवान् के अतिरिक्त किसी भी जगह पर प्रेम का अभाव होना अर्थात् केवल भगवान में ही अनुराग होना "वैराग्य" कहा जाता है ॥१॥

देहे च दैहिकेष्वम्ब! स्त्रीपुत्रधनवेश्मसु ।
पशुयानोपकरणक्षेत्रादिष्वरुचिस्तथा ॥२॥

हे अम्ब ! शरीर में तथा शरीरविषयक स्त्री, पुत्र, धन, घर, पशु, वाहन, क्षेत्र इत्यादि उपभोग के साधनों में अरुचि होना ॥२॥

शब्दादिपञ्चविषयभोगेषु विविधेषु च ।
अनर्घ्यवस्त्रभूषादौ राज्यभोगेषु चारुचिः ॥३॥

तथा अनेक प्रकार के शब्द आदि पंचविषयों में, मूल्यवान् वस्त्रों में, अलंकार इत्यादि पदार्थों में, राज्य के वैभवसुखों में भी अनास्था का होना ॥३॥

स्वर्गादौ पुण्यलोके च सद्भोगेष्वखिलेष्वपि ।
अनासक्तिः सर्वथेति वैराग्यं स्पष्टमीरितम् ।।४।।

स्वर्ग इत्यादि पुण्यलोकों में, तथा समस्त मनोहर विषयों के भोगविषयक सुखों में सर्वथा अरुचि होना, इसे भी "**वैराग्य**" ही कहते हैं ।।४।।

वैराग्य की उत्पत्ति कैसे हो?

प्रेमवत्युवाच -

वैराग्यमीदृशं कृष्ण ! जीवानामुदियात्कथम् ।
वक्तुमर्हति सर्वज्ञो मह्यं तत्तत्त्वतो भवान् ।।५।।

माता प्रेमवती ने पूछा, हे कृष्ण! अभी आपने जिस वैराग्य के विषय में बताया, वह कैसे उत्पन्न होता है? कृपया आप मुझे उन साधनों को तत्त्वतः बतलाइए । क्योंकि आप सभी तत्त्वों को जाननेवाले सर्वज्ञ हैं ।।५।।

श्रीहरिरुवाच -

वैराग्यस्य समुत्पत्तिः सर्वेषामपि देहिनाम् ।
लोकानां चैव भोगानां भवति क्षयदर्शनात् ।।६।।

इस प्रकार पूछने पर बालस्वरूप श्रीहरिकृष्ण ने कहा,हे माता! जब साधक को यह ज्ञान हो जाता है कि प्रधानपुरुष से लेकर कीट पर्यंत समस्त लोक तथा भोग सभी नश्वर है । इन सभी का अवश्य नाश होनेवाला है, तब उसके हृदय में निःसन्देह वैराग्य की उत्पत्ति होती है ।।६।।

नित्यो दैनन्दिनश्चैव प्राकृताख्यस्तृतीयक: ।
आत्यन्तिकश्चेति मात: ! प्रलयोऽस्ति चतुर्विध: ।।७।।

हे माँ ! प्रतिदिन प्रतिक्षण अनेक जीवों को मरते देखना यह दैनंदिन "**नित्य-प्रलय**" है । प्रधानपुरुष तथा उसके महदादि त्तत्वों के कार्य का मूलप्रकृति में विलीन होना यह "**प्राकृत**" प्रलय हैं। विराट् पुरुष के दिनका अंत अर्थात् त्रिलोकी का नाश होना यह "**नैमित्तिक**" प्रलय है तथा मूलप्रकृति और मूलपुरुष तथा उसके भी काल का भगवान् की इच्छा से उनके धामरूप तेज:पुजमें विलीन होना यह "**आत्यंतिक**" प्रलय है । ये चार प्रकार के "**प्रलय**" कहे जाते हैं ।।७।।

तत्र प्रकृतिकार्यस्य ब्रह्माण्डस्याखिलस्य च ।
ब्रह्मादे: स्थावरान्तस्य भोगानां चापि सर्वश: ।।८।।
विनाशो जायते नूनं कालेनैव बलीयसा ।
एवं क्षयं लोकयतां वैराग्यं तेषु सम्भवेत् ।।९।।

जब साधक इस प्रकार सोचता है कि बलवान् काल के वेग से प्रकृति के कार्यभूत अखिल ब्रह्मांड का तथा ब्रह्मा से लेकर स्थावर चराचर जगत् के समस्त लोक तथा भोगों का उन चार प्रकार के प्रलयों में निश्चित ही नाश होता है । तब उसके अंत:करण में वैराग्य की उत्पत्ति होती है ।।८-९।।

तथैव दु:खदृष्ट्याचापि देहिनां तत्समुद्भव: ।
भवेद्दु:खं तु सर्वेषां फलं दुष्कृतकर्मण: ।।१०।।

यदि कोई देहधारी मनुष्यों के दु:खों का अनुभव करे तो भी उसे वैराग्य हो जाता है । जो जिस प्रकार से पापकर्म करता है, उसे उसी प्रकार के दु:खों को भुगतना पड़ता है ।।१०।।

शिश्नोदरतृपां भूमौ सङ्गादेवासतां नृणाम् ।
प्रवृत्तिर्जायते पापे प्राणिनामतिदु:खदा ।।११।।

वैसे भी साधक को पाप करने की इच्छा कब होती है? जब वह केवल शिश्न तथा उदर का पोषण करनेवाले कुसंगी मनुष्यों की संगति में ही रहता है । फिर उस कुसंगति के द्वारा निर्माण हुए पापकर्म मनुष्यों को बड़ा ही दु:ख पहुँचाते हैं ।।११।।

विलीयते च सद्बुद्धिर्धर्मनिष्ठा ततो नृणाम् ।
ज्ञानादयो गुणाः सर्वे नश्यन्ति च कुसङ्गतः ।।१२।।

यदि असत्पुरुषों का संग हो जाय, तो सबसे पहले मनुष्य की सद्बुद्धि का नाश हो जाता है । फिर जहाँ सद्बुद्धि का ही नाश हुआ हो, वहाँ धर्म में निष्ठा कहाँ से रहेगी? और यदि धर्म में ही निष्ठा नहीं रहेगी तो फिर मनुष्य में ज्ञान आदि सद्गुण कैसे रहेंगे ? ।।१२।।

देहेऽहन्ता च तेनैव ममता दैहिकेषु च ।
विवर्धते ततस्तेषु ह्यासक्तिर्जायते भृशम् ।।१३।।

ज्ञान के अभाव से शरीर में अहंबुद्धि का आविर्भाव होता है । साथ में शरीर के संबंधियों में भी ममत्व बढ़ता चला जाता

है । अंततो गत्वा, जीवात्मा देह तथा अपने परिवारजनों में आसक्त बन ही जाता है ।।१३।।

देहस्त्रीपुत्रवित्तादौ तेऽहन्ताममतावशात् ।
आसक्तास्तत्कृते नानापापकर्माणि कुर्वते ।।१४।।

इस प्रकार शरीर, स्त्री, पुत्र, धन इत्यादि में मैं और मेरेपन के कारण अनुराग होने से उनके लिए फिर वह जीवात्मा नाना प्रकार के पापकर्मों को करता रहता हैं ।।१४।।

वञ्चयन्ति परन्यासान्विश्वस्तं घातयन्ति च ।
दम्भपैशुन्यशठतानृतवादपरा नराः ।।१५।।

हे माता ! इनमें दंभी, कपटी, धूर्त तथा मिथ्या अभिमानी इस प्रकार के पापी लोग होते हैं, उनके लिए किसी की अनामत को छीनना भी कोई बड़ी बात नहीं होती । और तो और, जिसने उन पर भरोसा किया उसका भी घात करने में वे कभी हिचकिचाते नहीं ।।१५।।

मिथ्यापवादानन्येषु ददतश्च परद्रुहः ।
हिंस्राः स्तेना अनीत्यैव कुटुम्बं पोषयन्ति ते ।।१६।।

इसी प्रकार जो हिंसकवृत्ति के तथा चोर पापी मनुष्य होते हैं, वे दूसरों पर मिथ्या कलंक लगाते हैं । उन्हें बहुत पीड़ा भी देते हैं और उनकी सारी संपत्ति का हरण करके अनीति से अपने परिवार का पालन-पोषण करते हैं ।।१६।।

इतस्तत उपानीय येन केनापि पाप्मना ।
कर्मणा गर्हितेनैव स्वानि पुष्णन्ति तैर्निजान् ।।१७।।

वे पापी मनुष्य शास्त्रों में जो निषिद्धकर्म है, उन्हींको नाना प्रकार से करते हुए जहाँ-तहाँ से कमाये धनसंपत्ति से अपने परिजनों का पोषण करते रहते हैं ।।१७।।

तदासक्त्या स्ववेदोक्तं धर्मं वर्णाश्रमात्मकम् ।
त्यक्त्वोपधर्मवेषादि दधते च निरङ्कुशाः ॥१८॥

वे निरंकुश पापी लोग अपने परिवार के पोषण के लिए वेदोक्त वर्णाश्रमधर्म का त्याग करते हैं । वेदविरुद्ध धर्म का आचरण करने से वे तनिक भी नहीं घबड़ाते तथा पाप करते समय किसी भी प्रकार के ढोंगीवेष को धारण करना उनके लिए कोई बड़ी बात नहीं होती ।।१८।।

गोविप्राणां च साधूनां वेदतीर्थामृतान्धसाम् ।
द्रोग्धारो मानिनः स्तब्धा विमुखा विष्णुभक्तितः ॥१९॥
खादन्ति मांसानि सुरा मद्यानि च पिबन्त्यपि ।
सज्जन्ते च परस्त्रीषु विधवासु च कामतः ॥२०॥

गाय, ब्राह्मण, संत, वेद, तीर्थ, देवताओं का द्रोह करनेवाले, अभिमानी, स्तब्ध अर्थात् संतों के एवं देवप्रतिमाओं के आगे भी न झूकनेवाले तथा भगवान् श्रीविष्णु की भक्ति से विमुख ऐसे पापी मनुष्य मांस का भक्षण तथा सुरा-मद्य का सेवन करते हैं। इतना ही नहीं, कामभाव से परस्त्री तथा विधवा स्त्री में भी आसक्त रहते हैं ।।१९-२०।।

अपेयपानं चाभक्ष्यभक्षणं कुर्वते मुहुः ।
वदन्त्यवाच्यानि च ते निस्त्रपाश्च मदोद्धताः ॥२१॥

वे निर्लज्ज बनकर गर्व से उद्धत मनुष्य की भाँति बार-बार अपेय वस्तु का प्राशन करते हैं, अखाद्यवस्तु का भक्षण करते हैं, तथा अवाच्य शब्दों को भी बोलते रहते हैं ।।२१।।

पापकर्मों से मिलती यमयातना का वर्णन

य इत्थं दुष्टकर्माणो मानवाः सन्ति भूतले ।
अन्तकाले लभन्ते ते कृच्छ्रं भूरितरं सति! ।।२२।।

हे साध्वि ! जो मनुष्य इस प्रकार पृथ्वीपर दुष्कर्म करते हैं उनको अंतकाल में बड़ा ही दुःख भुगतना पड़ता है ।।२२।।

यमदूतास्तदाऽऽयान्ति नेतुं ताननतिनिर्दयाः ।
वक्रतुण्डाः पाशहस्ता भयङ्करसमीक्षणाः ।।२३।।

जब पापियों का अंतसमय आता है, तो बड़े भयंकर वेषधारी, वक्र मुखवाले तथा अपनी दृष्टि से ही पापियों को भय उत्पन्न करनेवाले निर्दयी यमदूत उनको लेने आते हैं ।।२३।।

तेषां वीक्षणमात्रेण ते त्रुट्यद्देहबन्धनाः ।
सन्त्रस्ता वेपमानाङ्गा जायन्ते ह्यतिविक्लवाः ।।२४।।

उन्हें देखते ही पापियों के शरीर में रही नाड़ियाँ तूट जाती है । भय के कारण उनके गात्र काँपने लगते हैं । वे पापी बड़े व्याकुल हो जाते हैं ।।२४।।

ते लिङ्गदेह आबध्य स्थूलातिदृढभावने ।
नयन्ति तान् यमपुरं दीर्घेणैव कदध्वना ।।२५।।

उस समय यमदूत पापी जीवों को स्थूल शरीर की दृढ़ भावना से अभिभूत सूक्ष्म शरीर में बाँधते हैं । तत्पश्चात् उस पापी को अत्यंत दु:खों से व्याप्त ऐसे विस्तृत-मार्ग से यमपुरी में ले जाते हैं ।।२५।।

कशाभिर्लोहदण्डैश्च ताड्यमाना भृशं पथि ।
क्रूरैर्यमानुगैः पृष्ठे रुदन्त्युच्चैरनाश्रयाः ।।२६।।

वे यमदूत मार्ग में जाते समय उनके हाथ में रहे कोड़ो से तथा लोहे के दण्ड से उन पापियों को पीटते-पीटते ले जाते हैं । मार्ग में जिनको किसी का आश्रय नहीं मिलता ऐसे अनाथ पापी जीवात्मा बड़े जोरों से रोते-रोते चलते जाते हैं ।।२६।।

अर्कदावाग्निसन्तप्तवालुके भूरिकिण्टके ।
अशक्ताश्चलितुं मार्गे ताड्यन्ते ते च तैर्भृशम् ।।२७।।

सूर्य के ताप से एवं दावानल अग्नि से झुलसी हुई रेतमें तथा अगणित काँटे बिछाये हुए मार्ग पर जब वे पापी चल नहीं पाते, तब यमदूत उन्हें जोरों से बार-बार मारते हैं ।।२७।।

पतिताः कृच्छ्रतो भूमावुत्थाप्य पुनरर्दनैः ।
चाल्यन्ते पापिनो याम्यैः सत्वरं क्वाप्यविश्रमम् ।।२८।।

जब इस प्रकार की असह्य पीड़ा उन पापियों को मिलती है तब वे चलते-चलते जमीन पर गिर पड़ते हैं । उसी समय यमदूत उन्हें बैठाकर फिर से हथोड़े से मारते हैं । और थोड़ा भी विश्राम न देकर जोरों से चलवाते हैं ।।२८।।

त एवमतिकृच्छ्रेण नीयन्ते तैर्यमालयम् ।
यथा राजभटैरत्र स्तेनाद्या राजमन्दिरम् ॥२९॥

जिस प्रकार मनुष्यलोक में किसी राजा के सैनिक कोई चोर-लुटारू को राजभवन में ले जाते हैं । उसी प्रकार से यमदूत भी पापी जीवों को भयंकर पीड़ा देते हुए यमपुरी में ले जाते हैं ॥२९॥

तेषां दुष्टानि कर्माणि मनोवाक्कायजान्यपि ।
यमो जानाति सर्वाणि चित्रगुप्तश्च तत्र वै ॥३०॥

इन पापियों ने मन, कर्म तथा वचन से किये हुए सभी दुष्कर्मों को वहाँ यमपुरी में रहे धर्मराजा तथा उनके लेखक चित्रगुप्त भी भलीभाँति जानते हैं ॥३०॥

मुक्तिसाधनमानुष्यदेहव्यर्थीकृते रुषा ।
अपश्यंस्तान् यमो दूतैर्दापयत्यतियातनाः ॥३१॥

मोक्ष के साधनरूप इस मानव शरीर को व्यर्थ गुमानेवाले उन पापी जीवों पर उस समय यमराजा बडे क्रोध से दृष्टिपात करते हैं। तदुपरांत उनको अपने दूतों के द्वारा भयंकर यमयातना दिलाते हैं ॥३१॥

प्रमुख नरककुण्डों का वर्णन

नरकाणां दारुणानां भोग्यानां पापकर्मभिः ।
शतानि च सहस्राणि वर्तन्ते हि यमालये ॥३२॥

पापियों को पापकर्म भुगतने योग्य ऐसे सैंकडो़ तथा हजारों अति भयंकर नरकों के कुण्ड यमपुरी में रहे हैं ॥३२॥

पापिनस्तेषु महतीं प्राप्नुवन्ति हि वेदनाम् ।
नामानि तत्र केषाञ्चिच्छृणु मातर्वदामि ते ॥३३॥

हे माता ! उन नरककुण्डों में गिरकर पापी नाना प्रकार की यातनाओं को प्राप्त करते हैं । उनमें से जो मुख्य नरककुण्ड हैं, उनके नाम मैं आपको बतलाता हूँ । आप सुनिये ॥३३॥

तामिस्रश्चान्धतामिस्रो महारौरवरौरवो ।
कुम्भीपाकः कालसूत्रमसिपत्रवनं तथा ॥३४॥
अन्धकूपः शूकरास्यं सन्दंशः कृमिभोजनः ।
तप्तसूर्मिर्वैतरणी शाल्मलिर्वज्रकण्टकः ॥३५॥
प्राणरोधश्च पूयोदः सारमेयादनं तथा ।
लालाभक्षो वैशसनमयःपानमवीचिका ॥३६॥
क्षारकर्दममुख्याश्च सन्त्येवान्ये सहस्रशः ।
क्रोशन्तो यत्र पच्यन्ते नरा दुष्कृतकारिणः ॥३७॥

तामिस्र, अंधतामिस्र, महारौरव, रौरव, कुंभीपाक, कालसूत्र, असिपत्रवन, अन्धकूप, सूकरमुख, सन्दंश, कृमिभोजन, तप्तसूर्मि, वैतरणी, वज्रकण्टक, शाल्मली, प्राणरोध, पूयोद, सारमेयादन, लालभक्ष, वैशसन, अयःपान, अवीचिका तथा क्षारकर्दम इत्यादि नरक के प्रमुख कुण्ड हैं । तथा इनके अतिरिक्त अन्य हजारों भी कुण्ड है, जहाँ पापी मनुष्य को आक्रोश करते हुए नरकपीड़ा को भुगतना पड़ता है ॥३४-३७॥

दुष्कृतं यादृशं यस्य तादृशे निरये तु तम् ।
यमः क्षेपयति क्रुद्धो दूतैस्तत्कदनोद्यतैः ॥३८॥

पापी जीवों पर क्रोध करते हुए यमराजा उनको पीड़ा देने में आतुर ऐसे अपने दूतों के द्वारा जिसका जैसा पाप उसे उस प्रकार के नरक में ड़ालते हैं ॥३८॥

अङ्गानि पापिनां याम्याश्छित्त्वा छित्त्वा कुठारकैः ।
चर्वन्ति वज्रदशनाः खादयन्ति च तानि तैः ॥३९॥

यमदूत अपने हाथों में कुल्हाडी लेकर उन पापियों के शरीर के टुकड़े-टुकड़े करके अपने वज्र जैसे दाँतों से खाते हैं और उनको भी खिलाते हैं ॥३९॥

दाहयन्ति प्रदीप्तेऽग्नौ तप्ततैले क्षिपन्ति च ।
सर्पैश्च वृश्चिकैर्गृध्रैः श्वभिस्तान् खादयन्ति च ॥४०॥

वे यमदूत पापियों को प्रदीप्त अग्नि में जलाते हैं, तपाये हुए तेल में ड़ालकर पकाते हैं । तो किसी को सर्प, बिच्छू, गीध तथा कुत्तों को भी खिलाते हैं ॥४०॥

उद्धारयन्ति चान्त्राणि तेषां ते जीवतामपि ॥
भोग्यकर्मवशात्तत्र म्रियन्ते नैव पापिनः ॥४१॥

वे उन पापियों के जीवित शरीर से आँतों को खींच लेते हैं । इतनी यातना देने पर भी जब तक पापकर्म भुगतने के लिए शेष है तब तक वे पापी मरते नहीं ॥४१॥

यथा यथेह तैर्जीवा हता ये ये तथा तथा ।
तैस्तैस्तान् घातयन्त्युग्रा याम्या मुद्‌गरपाणयः ॥४२॥

इस लोक में पापियों ने जिन लोगों को जिस प्रकार से मारा होता है, वहाँ उन्हीं जीवों के द्वारा उसी प्रकार से मुद्‌गरधारी वे भयंकर यमदूत उन पापियों को मरवाते हैं ।।४२।।

दारयन्ति गजैः क्वापि पातयन्ति च तान्नगात् ।
विषाग्निधूमे रुन्धन्ति जले च क्षारकर्दमे ।।४३।।

कभी हाथियों के पैंरों से कुचलवाते हैं तो कभी पर्वत पर ले जाकर वहाँ से नीचे फेंकते हैं । कभी विषैली आग के धूएँ में घोंटते हैं, तो कभी क्षार से भरे दलदल में रौंदते हैं ।।४३।।

श्लेषयन्ति तप्तलोहप्रतिमास्तान् यमानुगाः ।
प्रवेशयन्ति नेत्रेषु शलाकाश्चायसीरपि ।।४४।।

तथा वे यमदूत व्यभिचार करनेवाले पापियों को अग्नि से तपायी हुई लोहे की प्रतिमा से आलिंगन करवाते हैं ।तथा उनकी आँखों में तीक्ष्ण लोहे की शलाका जोरों से घुसाते हैं ।।४४।।

सिञ्चन्ति सीसं कर्णेषु रसं लौहं मुखेषु च ।
रेतोविण्मूत्रपूयानि पाययन्ति च भूरिशः ।।४५।।

उबलते हुए सीसे का रस उन पापियों के कानों में ड़ालते है तथा अत्यधिक विष्ठा, मूत्र, वीर्य तथा पूय अर्थात् पीब मिला हुआ रक्त भी पिलाते हैं ।।४५।।

सीव्यन्ति दीर्घसूचीभिस्त्वचस्तेषां विदार्य च ।
निष्पेषयन्ति यन्त्रेषु तांश्च क्रूरा यमानुगाः ।।४६।।

वे क्रूर यमदूत पहले पापियों की त्वचा को चीरते हैं, फिर उसे लम्बी-लम्बी सूईसे सीते हैं । तथा कोल्हू में पेरे जानेवाले गन्ने के समान पेरते हैं ।।४६।।

एवंविधास्ते बहुशो यातनाः प्राप्नुवन्त्यथ ।
जरायुजाण्डजोद्भिज्जस्वेदजाख्याः खनीश्च ते ।।४७।।

ये सारे पापी मनुष्य इस प्रकार की सारी यमयातना की पीड़ा को भोगने के पश्चात् जरायुज, अंडज, उद्भिज्ज तथा स्वेदज, इन चार प्रकार की योनियों में जन्म धारण करते हैं ।।४७।।

गर्भवासमहादुःखं जन्मदुःखं ततो महत् ।
व्याधिदुःखं जरादुःखं मृत्युदुःखं पुनःपुनः ।।४८।।

माता ! गर्भवास का दुःख अत्यंत भयानक होता है, उससे भी बड़ा यदि कोई दुःख हैं, तो वह है जन्मका दुःख। उपर्युक्त सारी योनियों में जन्म लेकर वह पापी सभी व्याधियों की, वृद्धावस्था की तथा मृत्यु की पीड़ा को बार-बार प्राप्त करता है ।।४८।।

आध्यात्मिकादि त्रिविधं दुःखं मातश्च ते जनाः ।
यथाकर्म लभन्ते वै रुदन्तो भुञ्जते च तत् ।।४९।।

हे माँ ! इस प्रकार अपने अपने कर्मों के अनुसार उन पापी जीवात्माओं को आध्यात्मिक, आधिभौतिक तथा आधिदैविक, इन त्रिविध प्रकार की पीड़ाओं को भुगतना पड़ता हैं ।।४९।।

युगानां च सहस्राणि शतानि च पुनःपुनः ।
भ्रमन्ति तासु ते जीवा भूरिदुःखमयीषु च ॥५०॥

इस प्रकार वे पापी मनुष्य सैंकड़ो-हजारों युगों-युगों तक उन दु:खमय चौरासी योनियों में बार-बार भटकते हैं ॥५०॥

प्राप्नुवन्तः सृतीरित्थं क्वापि कृष्णकृपावशात् ।
नरदेहं लभन्ते ते भवमुक्त्येकसाधनम् ॥५१॥

यदि उन पापियों से कभी अच्छे सुकृत् हो जाय, तो उन पर भगवान की बड़ी कृपा हो जाती है । उस कृपा के माध्यम से उसे संसार-सागर से पार जाने के लिए मोक्ष का जो एकमात्र साधन है, ऐसे मानवशरीर की प्राप्ति होती है ॥५१॥

तं प्राप्य ये तु सत्सङ्गं कृत्वा कृष्णं भजन्ति ते ।
मुक्तिं च स्वेप्सितां भुक्तिं लभन्ते जननि! ध्रुवम् ॥५२॥

हे जननि ! इस प्रकार के दुर्लभ मनुष्य शरीर को प्राप्त कर जो मनुष्य सत्संग तथा भगवान की नवधा भक्ति करता है । वह इस लोक में मनचाही भुक्ति और फिर मुक्ति को नि:सन्देह ही प्राप्त कर लेता है ॥५२॥

ये त्वसत्सङ्गतः स्त्र्यादौ सज्जन्तेऽत्र कुबुद्धयः ।
कृष्णभक्तिविहीनास्ते दुःखं यान्त्येव पूर्ववत् ॥५३॥

मनुष्य जन्म लेने के उपरांत भी जो कुबुद्धि मनुष्य कुसंग से स्त्री आदि पदार्थों में आसक्त रहकर भगवान्

श्रीकृष्ण की भक्ति को नहीं करता, वह पूर्वोक्त यमयातना की पीड़ा को बार-बार प्राप्त करता है ।।५३।।

यमदूतकरान्प्राप्य महतीर्यान्ति यातनाः ।
योनीश्चतुरशीतिं च लक्षाणि पुनरेव ते ।।५४।।

इस प्रकार पापाचार करते पापी मनुष्य अंतसमय में यमदूत के हाथ लग जाते हैं और अनंत दुःखों को भुगतने पर चौरासी लक्ष योनियों में भटकते रहते हैं ।।५४।।

एवं संसृतिदुःखं ये पश्यन्त्यत्र मुहुर्नृणाम् ।
तेषामुदेति वैराग्यं सत्सङ्गात्तच्च वर्धते ।।५५।।

इह लोकी मनुष्यों की ऐसी पीड़ाओं को जो बार-बार देखता रहता है, उसके अंतःकरण में निश्चितरूप से वैराग्य की उत्पत्ति हो ही जाती है । फिर वह यदि संतों का संग करता है तो उसका वैराग्य दृढ़ बन जाता है ।।५५।।

ततो विरक्ताः कुर्वन्ति दुःखक्षयभयोज्झितम् ।
कृष्णाश्रयं सदानन्दं भीता दुःसङ्गतः सति ! ।।५६।।

हे साध्वि ! फिर वह वैरागी जीवात्मा उस भगवान् श्रीकृष्ण के शरण में जाता है, जहाँ कोई दुःखी दिखाई नहीं देता तथा जहाँ किसी बात का भय भी नहीं रहता । वहाँ तो सदैव आनंद ही आनंद रहता है ।।५६।।

वैराग्यहीनस्य सुखं नास्ति दुःखविवर्जितम् ।
भक्तिर्न वर्धते पुंसां वैराग्येण विना द्रुतम् ।।५७।।

जिसे वैराग्य की प्राप्ति नहीं हुई उसके दु:खों का अंत कभी हो नहीं सकता । सुख तो उसके कोसों दूर चला जाता है । यदि वैराग्य के बिना कोई मनुष्य भगवद्भक्ति की वृद्धि करना चाहे, तो भी वह कदापि नहीं कर सकता ।।५७।।

मायिकेषु विरक्तानां पदार्थेषु विवर्धते ।
कृष्णेऽनुरागो जननि! तेन यान्ति परां गतिम् ।।५८।।

हे जननि! जिसे सांसारिक पदार्थों से वैराग्य हुआ हो, उसे ही भगवान् श्रीकृष्ण में प्रेम की वृद्धि होती है । और वही भक्त मोक्ष की ओर गति करता है ।।५८।।

स्वरूपमित्थं जनयित्रि ! तुभ्यं प्रोक्तं विरक्तेः सह कारणेन ।
वदामि भक्तेरथ तन्मुमुक्षोरभीष्टदाया भवपाशबन्धात् ।।५९।।

मुझे जन्म देनेवाली हे माँ ! इस प्रकार वैराग्य की उत्पत्ति के साथ-साथ उसका स्वरूप भी मैंने आपको बतलाया । अब इस भवपाश के बंधनसे छूटने की कामना करनेवाले मनुष्यों को जो इच्छित सुख प्रदान करती है उस भक्ति का स्वरूप मैं आपको बताता हूँ ।।५९।।

इति श्रीसत्सङ्गिजीवने नारायणचरित्रे धर्मशास्त्रे प्रथमप्रकरणे हरिगीतायां वैराग्यस्वरूपलक्षणनिरूपणनामा चतुर्थोऽध्यायः ।।४।।

इस प्रकार श्रीनारायणचरित्र और धर्मशास्त्ररूप श्रीसत्संगिजीवन के प्रथम प्रकरणान्तर्गत श्रीहरिगीता में वैराग्य के स्वरूप का निरूपण करके चतुर्थ अध्याय समाप्त हुआ ।।४।।

अध्याय - ५

भक्ति शब्द का अर्थ

श्रीहरिरुवाच -

भजधातोस्तु सेवार्थः प्रेम क्तिन्प्रत्ययस्य च ।

स्नेहेन भगवत्सेवा भक्तिरित्युच्यते बुधैः ॥१॥

बालस्वरूप श्रीहरिकृष्णने कहा, हे माता! "भक्ति" इस पदमें जो "भज्" धातु है, उसका अर्थ होता है, सेवा करना । तथा दुसरा जो "क्तिन्" प्रत्यय है, उसका अर्थ है "स्नेह" अर्थात् प्रेमपूर्वक भगवान की जो सेवा करना, उसे ही पंडित लोग "भक्ति" कहते हैं ॥१॥

पतिव्रता यथा नारी सेवेत स्वपतिं तथा ।

अनन्यभावेन हरिं मुमुक्षुः सर्वदा भजेत् ॥२॥

जिस प्रकार कोई पतिव्रता स्त्री अपने पति की सेवा बड़े अनन्यभाव से करती है । उसी प्रकार भगवद्भक्त को भी भगवान् श्रीहरि की अनन्यभाव से सदैव भक्ति करनी चाहिए ॥२॥

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् ।

अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ॥३॥

उस भक्ति के नव प्रकार कहे हैं । भगवान श्रीविष्णु की कथा का श्रवण करना, उनका कीर्तन करना, उनका स्मरण करना, उनकी अनुवृत्ति में रहकर चरणचंपी करना, उनका

विधिवत् पूजन करना, उन्हें साष्टांग दंडवत् प्रणाम करना, दास की भाँति निर्मानी बनकर उनकी सेवा करना, उनमें विश्वास के साथ स्नेहयुक्त सखाभाव रखना तथा अपना सर्वस्व उन्हें समर्पण कर देना ॥३॥

लक्षणानि नवैतानि तस्यां सन्ति हि येषु च ।
श्रित एकमपि प्राणी सभुक्तिं मुक्तिमाप्नुयात् ॥४॥

हे माता ! यह भक्ति के नव प्रकार हैं । यदि कोई मनुष्य इस नवधाभक्ति में से किसी एक प्रकार की भी भक्ति कर लेता है, तो वह निश्चितरूप से भुक्ति और मुक्ति दोनों को प्राप्त हो जाता है ॥४॥

नवप्रकार की भक्ति का विश्लेषण

श्रवणं तत्र कर्तव्यं सर्वदा जन्मकर्मणाम्।
श्रीकृष्णस्य स्वधर्मस्थतद्भक्तवदनात्सति! ॥५॥
वराहाद्यवताराणां श्रीकृष्णस्यैव यानि च ।
चरित्राण्यादरात्तानि श्रोतव्यानि मुमुक्षुणा ॥६॥
तथा श्रीकृष्णभक्तस्य प्रह्लादस्य ध्रुवस्य च ।
प्रियव्रताम्बरीषादेः श्रोतव्याऽऽदरतः कथा ॥७॥

श्रवण भक्ति :- हे साध्वि ! स्वधर्म में निष्ठावान् भगवद्भक्तों के मुख से भगवान् श्रीकृष्ण के जन्म-कर्म की पावनकारी कथा का तथा उन्हीं के वराह आदि अवतारों के पवित्र तथा महान् चरित्रों का एवं प्रल्हाद, ध्रुव, प्रियव्रत, अंबरीष तथा उद्धव आदि भगवान् श्रीकृष्ण के भक्तों की

चरित्रगाथाओं का भी बड़े आदरभाव से निरन्तर श्रवण करना यह प्रथम "**श्रवण**" भक्ति कहलाती है ॥६-७॥

कीर्तनं राधिकाभर्तुश्चरित्राणां च तत्सताम् ।
कर्तव्यं च कथावार्तास्तेषामेव सदादरात् ॥८॥

कीर्तन भक्ति :- राधिकापति भगवान् श्रीकृष्ण के तथा उनके एकनिष्ठ संत-भक्तों के चरित्रों का सदैव संकीर्तन करना तथा उनकी कथाओं का भी आदरभाव से गायन करना ॥८॥

कृष्णतद्भक्तसम्बन्धग्रन्थानां पठनं तथा ।
पाठनं नित्यपाठश्च कर्तव्यः स्वहितार्थिना ॥९॥

भगवान् श्रीकृष्ण तथा उद्धव आदि भक्तों से संबंधित श्रीमद् भागवतादि सद्ग्रंथों का पठन-पाठन करना और नियमितरूप से उन सारे ग्रंथों का नित्यपाठ भी करते रहना, अपने हितको चाहनेवाले भक्तों के लिए अनिवार्य है ॥९॥

छन्दोनिबद्धपद्यानां गद्यानां च व्रजेशितुः ।
संस्कृतानां प्राकृतानां कार्यं वा गायनं मुदा ॥१०॥

व्रजपति भगवान से संबंधित संस्कृत तथा प्राकृत भाषायुक्त छंदोबद्ध गद्य तथा पद्यका भी बड़े आनंद से गायन करना ॥१०॥

कौशल्ये सति वीणादिवाद्यानुगतमेव तत् ।
कार्यं वा तालिकाध्वानैस्तल्लीनं वापि कर्हिचित् ॥११॥

वीणा आदि वाजिंत्र के वादन में कुशल भक्तों के द्वारा वाद्यों समेत भगवद्कीर्तन करना तथा हाथों से तालियाँ बजाकर कीर्तन करना एवं कभी तालियाँ न बजाते हुए भी कीर्तन करना पड़े, तो वहाँ उसी प्रकार से करना ।।११।।

प्रभोः स्तुतिः प्रार्थना च नामसङ्कीर्तनं तथा ।
कार्यं श्लोकादिभिर्वाम्ब ! प्रीत्या वाक्यैर्मनोरमैः।।१२।।

हे अम्ब ! कभी श्लोक आदिका उच्चारण करते हुए तथा सुंदर वाक्यों से प्रेमपूर्वक भगवान श्रीकृष्ण की स्तुति, प्रार्थना तथा संकीर्तन करना, इसे द्वितीय "**कीर्तन**" भक्ति कहा जाता है ।।१२।।

साङ्गोपाङ्ग भगवतो मूर्तिश्चिन्त्या हृदम्बुजे ।
एकैकमङ्गं पादादि ततश्च हसितावधि ।।१३।।

स्मरण भक्ति :- सर्वप्रथम अपने हृदयकमल में अंग-उपांगों समेत भगवद्मूर्ति का चिंतन करना। तदनन्तर चरणकमल से लेकर वदनकमल तक प्रत्यंग का चिंतन करना ।।१३।।

नाम्नां वृन्दावनविधोः कर्तव्यं स्मरणं हृदा ।
चरित्राणां गुणानां च जप्रव्यस्तन्मनुस्तथा ।।१४।।

तत्पश्चात् हृदय में वृन्दावनचंद्र भगवान श्रीकृष्ण के नामों का तथा गुण-चरित्रों का स्मरण करना एवं उनके नाममंत्र का भी जप करना ।।१४।।

तथा गोलोकवैकुण्ठादीनां धाम्नां जगत्पतेः ।
तत्रत्यपार्षदादीनां कार्यं च स्मरणं प्रसूः ॥१५॥

उस जगत्पति भगवान् के गोलोक, वैकुंठ आदि धामों का तथा उन धामों में रहे पार्षदों एवं ऐश्वर्यों का भी स्मरण किया करना, यह तृतीय "**स्मरण**" भक्ति कही जाती है ॥१५॥

पादसंवाहनं कार्यं प्रत्यक्षस्य तु सत्पतेः ।
अन्यथा मानसं कार्यं स्पर्शोऽङ्घ्रेः प्रतिमासु तु ॥१६॥

पादसेवन भक्ति :- हे माता! संत-सज्जनों के स्वामी ऐसे भगवान् श्रीकृष्ण के प्रत्यक्ष श्रीचरणों की चंपी करना । यदि प्रत्यक्ष न हो, तो मानसीपूजा में चरणचंपी करना । अन्यथा चित्रप्रतिमा में रहे भगवान् के श्रीचरणों का स्पर्श करना, इसे चतुर्थ "**पादसेवन**" भक्ति कहते हैं ॥१६॥

उत्पत्तिस्थितिनाशशक्तिमजयज्ञेशा हि यत्सेवया,
प्रापुः स्पर्शत एव यस्य च पुनात्यण्डं त्रिवर्त्मव्रजा ।
मायाकालभयं यदाश्रयवतां नश्यत्यथो सेव्यते,
यो राधाकमलादिभिर्भगवतोऽङ्घ्रि तं न सेवेत कः ॥१७॥

जिसके चरणकमलों की सेवा से ब्रह्मा, विष्णु तथा शिवजी को इस जगत् की उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय करने का सामर्थ्य प्राप्त होता है । उस परमात्मा के चरणकमलों के केवल स्पर्श से स्वर्ग, मृत्यु और पाताल में बहती पुण्यसलीला गंगामैया समूचे ब्रह्मांड को पावन करती है ।

उसके उसी चरणकमलों के आश्रय से मनुष्य को काल तथा माया का भी भय नहीं रहता । जिसके श्रीचरणों की सेवा वृषभानुनंदिनी राधा तथा रमा आदि शक्तियाँ भी निरन्तर करती रहती हैं, भला! परमात्मा के ऐसे पावनचरणों की सेवा मनुष्य क्यों न करे । वह तो निश्चितरूप से करेगा ही ।।१७।।

यत्संसेवनतश्च पद्मनिलयादिभ्योऽपि कीर्तिं ययु-
भूयिष्ठां व्रजयोषितः कविवरव्यासादिगेयां भुवि ।
तल्लीलानरनाटनस्य चरणं वृन्दावनेन्दोर्मुदा,
सेव्यं संसृतिमुक्तिकामुकनरैस्तेषां हि नान्या गतिः ।।१८।।

भगवान् के इन्हीं चरणों की सेवा करने से तो धरा पर रही सभी व्रजनारियाँ, लक्ष्मी आदि देवियों से तथा ब्रह्मा आदि देवताओं से भी अधिक तथा व्यास आदि श्रेष्ठ कवियों को गायन करने योग्य यश को प्राप्त हुई हैं । इसलिए भवसागर को पार करने की कामना करनेवाले भक्तों को चाहिए कि वे दिव्यलीलाओं के माध्यम से नरनाटक को करते वृंदावनविहारी भगवान् श्रीकृष्ण के चरणकमलों का ही अवश्य प्रेमसे सेवन करें । क्योंकि भक्तों के लिए भगवत्सेवा ही गतिरूप है अर्थात् मुक्तिरूप है ।।१८।।

अर्चनं तु द्विधा प्रोक्तं मातः ! कृष्णस्य सात्त्वतैः ।
आभ्यन्तरं तथा बाह्यं यथाशक्ति यथाविधि ।।१९।।

अर्चन भक्ति :- हे माता ! नारद आदि भगवान् के भक्तों ने जो शक्ति तथा शास्त्रविधि के अनुसार भगवान् का पूजन

करने का विधान किया है । वह आंतरिक-मानसी पूजा तथा बाह्य-प्रत्यक्ष पूजा ऐसे दो प्रकार का है ।।१९।।

यथाश्रुतं हृदि ध्यात्वा कृष्णं मानसकल्पितैः ।
महोपचारैरर्चा तु प्रोक्तं तत्रादिमं बुधैः ।।२०।।

इसमें आंतरिक पूजन अर्थात् मानसी पूजा इस प्रकार है, भगवान् संबंधित शास्त्रों तथा संतों के द्वारा भगवान् को जिस प्रकार सुना हो या जाना हो, उसी प्रकार से प्रत्यक्ष प्रतिमा के रूप में अपने हृदय में उस परमात्मा का ध्यान कर मानसिक संकल्पों से चंदन-पुष्प आदि अर्पण कर के जो महापूजन करना, इसे ज्ञानी मनुष्य "**मानसी-पूजा**" कहते हैं ।।२०।।

उपचारैर्यथालब्धैर्बहिः कृष्णस्य पूजनम् ।
यथाधिकारं वेदोक्तमन्त्राद्यैस्तद् द्वितीयकम् ।।२१।।

अब बाह्य पूजन इस प्रकार है, देश तथा काल के अनुसार मिले हुए चंदन आदि के द्वारा अपने अधिकार से वेदमंत्रों के अथवा पौराणिक मन्त्रों के माध्यम से अपने समक्ष सिंहासन में विराजमान भगवान् श्रीवासुदेव का पूजन करना, यह बाह्यपूजन है ।।२१।।

आद्यमादौ विधायैव द्वितीयं तत आचरेत् ।
चलायां प्रतिमायां तु कृष्णमावाह्य पूजयेत् ।।२२।।

इन दोनों पूजन में भक्त को चाहिए कि वह प्रथम मानसी-पूजा करे । तदुपरांत बाह्यपूजन करे। बाह्य-पूजन भी

चलप्रतिमा में भगवान श्रीकृष्ण के मन्त्रों से आह्वाहन करने के उपरांत ही करे ।।२२।।

मद्यमांसादिसंसर्गरहितैः शुचिभिस्तथा।
द्रव्यैः प्रसिद्धैः कृष्णोऽर्च्यो ह्यन्यदेवासमर्पितैः ।।२३।।

आह्वाहन करने के पश्चात् मद्य, मांस, केश, कीड़े-मकोड़े आदि के संसर्ग से रहित, किसी ने उनकी सुवास न ली हो इस प्रकार से पवित्र, नीचे न गिरे हो तथा किसी अन्य देविदेवताओं को अर्पण न किये हो, ऐसे चंदन, पुष्प आदि उपचारों से भगवान् श्रीकृष्ण का पूजन करना चाहिए ।।२३।।

कृष्णं संस्नाप्य वासांसि धारयेत यथोचितम् ।
अलङ्कारांश्च विविधान् यथास्थानं तु धारयेत् ।।२४।।

इस प्रकार से बाह्य-पूजन करते समय प्रथम परमात्मा की प्रतिमा को विशुद्ध जल से स्नान कराना, तदनन्तर उचित वस्त्र परिधान कराना तथा नाना प्रकार के आभूषणों को भी यथास्थान पर धारण कराना ।।२४।।

काश्मीरकेसरोपेतचन्दनाद्यनुलेपनम् ।
यथा ऋत्वर्चकः कुर्यात् प्रेम्णा च तिलकं प्रभोः ।।२५।।
हारान्सुगन्धिपुष्पाणामवतंसांश्च शेखरान् ।
भगवन्तं धारयित्वा धूपं दीपं समर्पयेत् ।।२६।।

ऋतु के अनुसार काश्मीरी कुंकुम, केसरयुक्त चंदन का लेप तथा भालप्रदेश में बड़े भाव से तिलक कराना । भगवान को सुगंधित पुष्पमालाएँ अर्पण करना, गुच्छ तथा

कलगी आदि धारण कराना एवं सुवासित धूप-दीप अर्पण करना ।।२५-२६।।

यथर्तु च यथाशक्ति नैवेद्यमुपकल्पयेत् ।
महानीराजनं कुर्याद्वादित्रनिनदैः सह ।।२७।।
प्रदक्षिणां च स्तवनं प्रार्थनां च नमस्कृतिम् ।
कुर्यादित्थं प्रतिदिनं तत् कृष्णस्यार्चनं स्मृतम् ।।२८।।

तदुपरांत ऋतु के अनुरूप और अपने शक्ति के अनुसार नैवेद्य अर्पण करना । उसके पश्चात् दुंदुभि आदि वाद्यों को बजाकर आरती करना । भगवान् की परिक्रमा, स्तुति, प्रार्थना तथा प्रणाम करना, इसे भगवान का बाह्य-पूजन कहते हैं ।।२७-२८।।

प्रातःसङ्गवमध्याह्नापराह्णेषु निशामुखे ।
कृष्णस्येत्थं पञ्चकालमर्चनं प्रोक्तमुत्तमम् ।।२९।।

हे माता! प्रातःसमय में एवं संगवकाल में अर्थात् सूर्योदय से छः घड़ी का समय रहते, मध्याह्नसमय में अर्थात् सूर्योदय के पश्चात् सातवी घड़ी में, अपराह्ण समय में अर्थात् दुपहर के चारबजे तथा सायंकाल में , इस प्रकार दिन में पाँच बार भगवान श्रीकृष्ण का जो पूजन किया जाता है, वह "**उत्तम**" पूजन है ।।२९।।

प्रत्यूषकाले मध्याह्ने सायं चेति त्रिरर्चनम् ।
मध्यमं ह्येककालं तत्कनीयोऽशक्तदेहिनाम् ।।३०।।

प्रात:काल में, मध्याह्न में तथा सायंकाल में जो पूजन होता है, उसे "**मध्यम**" पूजन कहते हैं। तथा केवल प्रात:समय में एक ही बार जो करते हैं, उसे "**कनिष्ठ**" पूजन कहते हैं। यह कनिष्ठपूजन केवल अशक्तभक्तों के लिए हैं ।।३०।।

जन्मोत्सवेषु सर्वेषु कृष्णस्यैकादशीषु च ।
कर्तव्या महती पूजा गीतवादित्रसंयुता ।।३१।।

जन्माष्टमी, रामनवमी तथा एकादशी आदि व्रतों के दिनों में गीत-वाद्यों के साथ भगवान् की महापूजा करनी चाहिए ।।३१।।

उपवासो जागरश्च कर्तव्यस्तेषु शक्तितः ।
पारणाहेषूत्सवेषु भोज्या विप्राश्च साधवः ।।३२।।

अपनी शक्ति के अनुसार उपवास तथा रात्री में जागरण भी करना चाहिए । पश्चात् भगवान् का भक्त दूसरे दिन अनुष्ठान का उद्यापन विधि करे । तथा उद्यापन एवं अन्नकूट आदि के उत्सवदिनों में भगवान् के संत-ब्राह्मणरूप भक्तों को भोजन कराना चाहिए ।।३२।।

धनिकः कारयेत्कृष्णमन्दिराणि दृढानि च ।
प्रतिष्ठां तेषु कृष्णस्य कारयेत्स महोत्सवैः ।।३३।।

धनिक भक्तों को चाहिए कि वे सुदृढ़ भगवान के नूतन मंदिरों का निर्माण कार्य करें । तथा महोत्सव का आयोजन कर उसमें शास्त्रविधि से भगवान् श्रीकृष्ण की प्रतिमाओं का स्थापन करें ।।३३।।

पूजाप्रवाहसिद्ध्यर्थं ग्रामक्षेत्रधनादिभिः ।
तद्वृत्तिमपि निर्बाधां सान्तत्येनैव वर्तयेत् ॥३४॥

उसमें पूजा आदि प्रवाह चलता रहे इसलिए गाँव, क्षेत्र, धन आदि का दान करके कभी कोई बाधा न आए, इस प्रकार से उन मंदिरों की आजीविका को वे धनी भक्त बनाये रखें ॥३४॥

कूपं वापीं तडागादिं कृष्णार्थं पुष्पवाटिकाम् ।
कारयेद्वैष्णवान् यज्ञानहिंसान्विदधीत च ॥३५॥

तथा दैनंदिन भगवान् की सेवा होती रहे इसलिए कुआँ, वापी (छोटी-बावली), जलाशय तथा पुष्पवाटिका जैसे अति उपयोगी कार्यों का भी निर्माण उन्हें करना चाहिए तथा अहिंसायुक्त श्रीविष्णुयाग आदि महान् यागों का भी आयोजन करते रहना चाहिए ॥३५॥

श्रीकृष्णस्यैव मन्त्राणां पुरश्चर्यां विधानतः ।
ग्रन्थानां तत्पराणां च कारयेद्वैष्णवैर्द्विजैः ॥३६॥

हे माता ! वे धनी गृहस्थभक्त वैष्णवी दीक्षा प्राप्त अपने धर्म में निष्ठावान् ब्राह्मणों के द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण के अष्टाक्षर मन्त्र का तथा श्रीमद् भागवत आदि सद्ग्रंथों का पुरश्चरण विधिविधान से करवाए ॥३६॥

कृष्णार्चाशिष्टगन्धाद्यैरर्च्याः सर्वाश्च देवताः ।
पितरः साधवो विप्रास्तर्प्याः कृष्णार्पितान्धसा ॥३७॥

तथा भगवान् के प्रासादिक चंदन आदि उपचारों से सभी देवता, संत तथा ब्राह्मणों का पूजन करें । एवं प्रासादिक नैवेद्य खिलाकर उन सभी को तृप्त भी करें । इस प्रकार बाह्य-आंतरिक पूजन करना, इसे पंचम "**अर्चन**" भक्ति कहते हैं ।।३७।।

साष्टाङ्गं वन्दनं कार्यं श्रीकृष्णाय च पूरुषैः ।
पञ्चाङ्गमेव नारीभिर्भक्ताभिस्तु शुचिव्रते! ।।३८।।

वंदन भक्ति :- पवित्रव्रत धारण करनेवाली हे माता! भगवान् श्रीकृष्ण के जो पुरुष भक्त हैं, वे भगवान् को साष्टांग दंडवत् प्रणाम करें । तथा जो स्त्री-भक्त हैं, वे पंचांग प्रणाम करें ।।३८।।

श्रीकृष्णपादस्पृष्टेषु रजःसु परिलुण्ठनम् ।
कार्यमक्रूरवच्छीर्षे निधातव्यानि तानि च ।।३९।।

जिस प्रकार अक्रूरजी व्रजभूमि में भगवान् के चरणकमलों से अंकित रज में लोट-पोट हो गये थे, उसी प्रकार भगवद्‌चरणकमलों से अंकित धूली में लोट-पोट हो जाना तथा उस चरणरज को मस्तक पर चढ़ाना, इसे छठवी "**वंदन**" भक्ति कहते हैं ।।३९।।

दास्यं भगवतः कार्यं हित्वा मानं च दूरतः ।
यथाकालं दास इव परिचर्यापरो भवेत् ।।४०।।

दास्य भक्ति :- भगवान् के भक्त को चाहिए कि वह अभिमान का दूर से ही त्याग करे तथा उनका दास बनकर

रहे । समय-समय पर सेवक की भाँति उनकी सेवा करता रहे ।।४०।।

स्वयमेवाहरेत्तोयं कृष्णार्थं कुसुमानि च ।
तुलसीं घर्षयेद्गन्धं कुर्यात् पाकं शुचिः शुभम् ।।४१।।

वह सेवा इस प्रकार से करे। भगवान् के लिए स्वयं जल लाना, पुष्पों का चयन करना, तुलसी को स्वयं तोड़ना, चंदन घिसना, पवित्र बनकर उनके लिए भोजन बनाना ।।४१।।

तालवृन्तादिभिः कृष्णं वीजयेच्च यथाऋतु ।
सम्मार्जनं चोपलेपं कुर्याच्छ्रीकृष्णमन्दिरे ।।४२।।

ऋतु के अनुसार ताड़ का पंखा झलाना तथा चँवर डुलाना। भगवान् श्रीकृष्ण के मंदिर को स्वच्छ करना और शुद्ध गोमय से लेपन करना ।।४२।।

यथोचितं च भक्तानामन्नतोयफलादिभिः ।
कुर्वीत सेवनं प्रीत्या निर्मानः प्रणमेच्च तान् ।।४३।।

भगवान् के मंदिर में दर्शन के लिए आये भक्तों को अन्न, जल तथा फल आदि पदार्थों से उनकी यथायोग्य प्रेम से संभावना करना । तथा मान का त्याग कर के उन्हें प्रणाम करना, यह सप्तम "**दास्य**" भक्ति कही है ।। ४३।।

द्रौपद्यर्जुनवत्कार्यं सख्यं कृष्णेन मानदे ! ।
देहस्त्रीपुत्रवित्तादेः कार्यः स्नेहोऽधिकः प्रभौ ।।४४।।

सख्य भक्ति :- सभी को यथायोग्य सम्मान देनेवाली हे माता ! भगवद्भक्त को चाहिए कि वह अर्जुन तथा द्रौपदी की भाँति भगवान् से सखा भाव रखे । शरीर, पत्नी, पुत्र तथा धन आदि से अधिक केवल परमात्मा को ही प्रेम करे ।।४४।।

मानुष्यनाट्यं दधतः क्रियास्वस्य न दोषधीः ।
क्वापि कार्याऽथ विश्वासः कार्योऽस्यैव दृढः सति ! ।।४५।।

हे साध्वि ! मनुष्यभाव को लेकर जब भगवान कोई लीलाएँ करते हैं तो उनमें कभी दोष न देखते हुए उनके चरित्रों में अधिकाधिक दृढ़ विश्वास बनाए रखना, यही अष्टम "**सख्य**" भक्ति कही है ।।४५।।

लक्षणं नवमं भक्तेः शृण्वथात्मनिवेदनम् ।
कृष्णार्थ एव कर्तव्य आत्मा जननि ! सर्वथा ।।४६।।

आत्मनिवेदन भक्ति :- हे जननि! अब मैं आपको आत्मनिवेदन नामक भक्ति के लक्षणों को बतलाता हूँ । आप उसे सुनिये । अपने आत्मा को पूरी तरह से भगवान् श्रीकृष्ण को समर्पित कर देने का नाम ही "**आत्मनिवेदन**" भक्ति है ।।४६।।

देहेन्द्रियान्तःकरणस्वभावानां तथा पितुः ।
पुत्रादेः स्वजनस्यापि वशे वर्तेत न क्वचित् ।।४७।।

शरीर, सभी इन्द्रियाँ, अंतःकरण, स्वभाव, पिता, पुत्र तथा परिजनों के वशमें न होना, यही आत्मनिवेदी भक्त की विशेषता है ।।४७।।

कृष्णाधीनो भवेन्नित्यं कृष्णार्थसकलक्रियः ।
कृष्णभक्तौ विघ्नकृतः स्वभावस्वजनांस्त्यजेत् ।।४८।।

अपना सर्वस्व सदैव भगवान् श्रीकृष्ण के आधीन कर देना । सभी क्रियाएँ उनके लिये ही करते रहना । यदि भगवद्भक्ति में अपना स्वभाव तथा अपने परिजन कोई बाधा करते हो, तो उनका भी त्याग कर देना ।।४८।।

कृष्णस्यैवेक्षणं कुर्याद्दृशा श्रुत्या च तत्कथाम् ।
शृणुयाच्च त्वचा स्पर्शं कुर्यात्तस्यैव पादयोः ।।४९।।

अपने नेत्रों से भगवान् श्रीकृष्ण का दर्शन करना, कानों से उनकी कथा का श्रवण करना, त्वचा से उनके चरणकमलों का ही स्पर्श करना ।।४९।।

तद्गुणोच्चारणे जिह्वां तन्नैवेद्याशने तथा ।
कुर्यान्नासां तदुच्छिष्टपुष्पाद्याघ्रहणे परम् ।।५०।।

जिह्वा से उनके गुण-कीर्तन करना तथा उनके प्रासादिक नैवेद्य को ग्रहण करना। नासिका से उनको अर्पण किए पुष्प आदि का ही सुगंध लेना ।।५०।।

हस्तौ तत्परिचर्यायां शीर्षं तदभिवन्दने ।
प्रदक्षिणायां तस्याङ्घ्री कुर्यात्तन्निकषागतौ ।।५१।।

हाथों से भगवान् की सेवा करना । मस्तक से उन्हें वंदन करना । पैरों से उनकी परिक्रमा करना तथा चलकर उनके समीप जाना अर्थात् प्रतिदिन भगवान के मंदिर में जाना ।।५१।।

सङ्कल्पान्मनसा कुर्यात्कृष्णस्यैव च निश्चयम् ।
धिया च चेतसाऽस्यैव कुर्याच्चिन्तनमञ्जसा ॥५२॥

मन से केवल परमात्मा से जुड़ी बातों का ही चिंतन करना । बुद्धि से उनका ही निश्चय करना। चित्त से उनका चिंतवन करना ।।५२।।

कृष्णदासत्वाभिमानः स्वस्मिन्कार्यस्तथाऽहमा ।
कृष्णार्थमेव कार्या च कृषिर्व्यापार उद्यमः ॥५३॥

"मैं भगवान् श्रीकृष्णका दास हूँ" इस प्रकारका गर्व करना । खेतकाम, उद्योग, व्यापार आदि जो भी करना, वह सब भगवान के लिए ही करना ।।५३।।

यद्यत्स्वेष्टं भवेत्तत्कृष्णायैव निवेदयेत् ।
गन्धपुष्पांशुकादीनि तत्प्रसादीनि धारयेत् ॥५४॥

स्वयंको मिले हुए अच्छे पदार्थ पहले भगवान् को समर्पित करना । जो चंदन, पुष्प तथा वस्त्र भगवान् के प्रासादिक हो,उनका ही ग्रहण करना ।।५४।।

पत्रमात्रमपि क्वापि कृष्णायानर्पितं तु यत् ।
तन्न भक्ष्यं तथाभूतं न पेयं वारि चानघे! ॥५५॥

हे निष्पाप माता ! इस प्रकार का आत्मसमर्पण करनेवाला आत्मनिवेदी भक्त भगवान् को अर्पण किये बिना एक पत्ता भी नहीं खाता और जल को भी ग्रहण नहीं करता ।।५५।।

तपोयज्ञव्रतं दानं वैष्णवानां च सेवनम् ।
प्रसन्नतायै कृष्णस्य कर्तव्यं तस्य सेवकैः ॥५६॥

तपस्या, व्रत, दान, यज्ञ तथा भक्तों की सेवा, इत्यादि जो भी भगवत्कार्य यह आत्मनिवेदी भक्त करता है, वह केवल भगवत्प्रसन्नता के लिए ही करता है ।।५६।।

सकाम-निष्काम भक्त के लक्षण

एवं भजन्ति ये कृष्णं श्रुत्यादिनवलक्ष्मया ।
भक्त्या ते कथिता भक्ता द्विविधास्तेऽपि कीर्तिताः ।।५७।।

इस प्रकार श्रवण, कीर्तन आदि नव प्रकार से जो भगवान् श्रीकृष्ण की भक्ति करता है, वही "**आत्मनिवेदी**" भक्त कहलाता है । ऐसे भक्तों के भी दो प्रकार हैं, एक सकाम और दूसरा निष्काम ।।५७।।

तत्राद्यास्तु सकामास्ते धर्ममर्थं च विस्तृतम् ।
कामं च स्वेप्सितं मोक्षं कृष्णादेवाप्नुवन्ति हि ।।५८।।

उन दोनों भक्तों में पहला जो सकाम भक्त है वह धर्म, अधिक धन, इच्छित भोग तथा मोक्ष ये सभी पदार्थ भगवान् से ही प्राप्त करता है, किं बहुना करना चाहता है ।।५८।।

देहान्ते ते च कृष्णस्य गोलोकादिषु धामसु ।
लभन्ते स्वेष्टसौख्यानि तस्मादेवाक्षयाणि हि ।।५९।।

यह सकाम भक्त जब अपने शरीर को छोड़ता है, तब वह गोलोक आदि धामों में रहे मनचाहे सुखों को परमात्मा से ही प्राप्त कर लेता है ।।५९।।

निष्कामा इतरे ते तु कृष्णसेवनमन्तरा ।
मुक्तीश्चतुर्विधाः सिद्धीश्चाष्टौ नेच्छन्ति कर्हिचित् ।।६०।।

अब जो दूसरा भक्त है, वह है निष्काम भक्त । यह भक्त तो भगवान् श्रीकृष्ण की सेवा के अतिरिक्त चार प्रकार की मुक्ति की तथा अणिमा आदि अष्टसिद्धियों की भी कामना नहीं करता ।।६०।।

दीयमानं भगवताप्यैश्वर्यमिदमूर्जितम् ।
तस्य सेवान्तरायत्वान्न गृह्णन्ति हृदाऽपि ते ।।६१।।

इस निष्कामी भक्त को यदि भगवान् स्वयं मुक्ति या ऐश्वर्यों को प्रदान करना चाहें, फिर भी उन्हें स्वीकार करने में वह हिचकिचाता है और उनका स्वीकार नहीं करता, क्योंकि वह जानता है कि ये सारे पदार्थ भगवान् की सेवा-भक्ति में बाधा ड़ालनेवाले हैं ।।६१।।

निष्कामभावेनेत्थं यो मातः ! कृष्णं भजेन्नरः ।
भक्तोत्तमः स विज्ञेयः पूर्णो हृदयमस्य हि ।।६२।।

हे माता ! इस प्रकार जो भक्त निष्कामभाव से भगवान् श्रीकृष्ण की भक्ति करता है वही सभी भक्तों में श्रेष्ठ भक्त हैं। यह बात आप समझ लीजिये । ऐसा कृतकृत्य भक्त ही परमात्मा के हृदय समान कहलाता है ।।६२।।

भगवन्तं प्रतिदिनं सेवमानस्य तस्य च ।
प्रेमा विवर्धतेऽत्यर्थं स च विघ्नैर्न हन्यते ।।६३।।

इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण की जो प्रतिदिन सेवा करता रहता है, उसे भगवान् में दृढ़ प्रीति हो ही जाती है ।

फिर चाहे कितनी भी बाधाएँ क्यों न आए? पर भगवान् में बँधे उसके स्नेह का नाश कदापि नहीं हो पाता ।।६३।।

यथा प्रवाहो गङ्गया अन्तरायान् गिरीनपि ।
विभिद्यावगणय्याशु समुद्रमभियाति हि ।।६४।।

जिस प्रकार गंगाजी का प्रवाह उसे अवरोध करनेवाले हिमालय आदि शिखरों को अनदेखा कर के उन्हें चीरती हुई समुद्र की ओर गति करती है ।।६४।।

तथा प्रेमाऽस्य भक्तस्य देशकालक्रियामुखान् ।
विघ्नान्महत उल्लङ्घ्य कृष्णमेव प्रपद्यते ।।६५।।

उसी प्रकार इस निष्काम भक्त का प्रेम भी असद् देश,काल तथा क्रिया आदि का उल्लंघन कर के भगवान् श्रीकृष्ण की ओर ही गतिमान होता है ।।६५।।

आन्तराणां च बाह्यानां करणानां तु सर्वशः ।
स्वभावाद्वृत्तयः कृष्णे तस्य स्युर्विषयेष्विव ।।६६।।

प्राकृत पंचविषयों में निरन्तर आसक्त रहनेवाले पुरुष की सभी इन्द्रियों का आकर्षण जैसे सहज पंचविषयों की तरफ होता है, वैसे इस निष्कामी भक्त के बाह्य तथा आंतरिक इन्द्रियों का आकर्षण सहजता से भगवान् श्रीकृष्ण की मूर्ति में ही होता है ।।६६।।

साक्षात्कृष्णे भगवति प्राप्तस्नेहभरः स तु ।
नानुरक्तो भवेत्क्वापि तं विनाऽन्यत्र वस्तुनि ।।६७।।

जो प्रत्यक्ष भगवान् श्रीकृष्ण का प्रेमानुरागी हो, ऐसा निष्कामी भक्त भगवान के अतिरिक्त किसी अन्य वस्तु में प्रेम कर ही नहीं सकता । सदैव वह भगवान में ही अनुरक्त रहता है ।।६७।।

लोकेऽस्ति द्विविधं वस्तु रमणीयं तथेतरत् ।
तत्रास्य रमणीयं यद्दुःखरूपं भवेद्धि तत् ।।६८।।

हे माता ! इस जगत् में दो प्रकार की वस्तुएँ होती हैं । एक है सुंदर और दूसरी है कुरूप, जो सुंदर नहीं होती । जो सच्चा निष्कामी भक्त होता है, उसे वह सुंदर वस्तु भी दुःखरूप होकर पीड़ा देती हैं ।।६८।।

अरम्येषु पदार्थेषु क्वापि किञ्चित्सुखं भवेत् ।
रम्येषु तु महद्दुःखं भवेत्कृष्णानुरागिणः ।।६९।।

जिसे भगवान् श्रीकृष्ण में दृढ़ स्नेह हो जाता है, उसे कुरूप पदार्थों से ही बड़ा लगाव हो जाता है, क्योंकि सुंदर पदार्थों से तो उसे बड़ी पीड़ा मिलती रहती है ।।६९।।

विषपङ्कायते तस्य मलयागुरुचन्दनम् ।
सर्पायन्ते पुष्पहारा भूषणं दूषणायते ।।७०।।

ऐसे निष्कामी भक्त को मलयागर चंदन का लेप भी विष के कीचड़ जैसा लगने लगता है । सुगंधित पुष्पमालाएँ काले साँप की भाँति लगती हैं तथा अलंकारों को परिधान करना भी बड़ा दूषण-सा लगता है ।।७०।।

रुचिराः कौसुमाः शय्या दीप्रपावकसन्निभाः ।
भवन्ति तस्य चन्द्रोऽपि भक्तस्य तपनायते ॥७१॥

उस भक्त को सुंदर फुलों की शय्या जलती हुई अग्नि के समान लगती है। शरदकालीन चंद्रमा ग्रीष्मकालीन सूर्य के समान दहकता हुआ दिखाई देता है ॥७१॥

रुचिरं मन्दिरं तस्य घोरारण्यायते नवम् ।
सुगन्धिः शीतलो वायुर्दावज्वालायते भृशम् ॥७२॥

ऐसे निष्काम भक्त को सुंदर नये महल भी निर्जन जंगल की भाँति सुने लगते हैं । तथा सुवासित और शीतल पवन भी अत्यंत भयानक दावानल के जैसा लगता है ॥७२॥

भारायते सूक्ष्मवासः स्वजनश्च वृकायते ।
रूपं कुष्ठायते तस्य स्वादु भोज्यं विषायते ॥७३॥

इस प्रकार के भक्त को अच्छे और रेशमी वस्त्र भी भाररूप लगते हैं तथा अपने पुत्र आदि परिजन भी भेड़ियों के समान दिखते हैं । किसी के शरीर का सौन्दर्य तो कुष्ठरोग की भाँति बड़ा ड़रावना लगता है और स्वादिष्ट भोजन विष के समान लगता है ॥७३॥

मनोज्ञं गायनं तस्य तीक्ष्णबाणायते तथा ।
राक्षसीव भवत्येव नारी देवाङ्गनोपमा ॥७४॥

कानों को जो प्रिय लगता है ऐसा लौकिक अतिसुंदर गीत भी उसे सीने में लगे तीक्ष्ण बाण की भाँति चूभता है ।

तथा स्वर्ग की अप्सरा के समान सुंदर स्त्री भी उसे राक्षसी जैसी नजर आती है ॥७४॥

स्नेहोऽनुमेयो भक्तस्य चिह्नैरेतैर्विरागिणः ।
कृष्ण एव स्फुरत्येकस्तस्यान्तश्च बहिः सदा ॥७५॥

हे माता ! उस बैरागी भगवद्भक्त का स्नेह भगवान् के प्रति कितना गहरा है? यह तो इन सारे बाह्यचिह्नों से समझ में आ ही जाता है । इस भक्त को अपने अंतःकरण में तथा बाहर केवल एक परमात्मा का ही आभास होता रहता है ॥७५॥

सहसा स्फुरितं स्नेहात्तं दृष्ट्वा हसति क्वचित् ।
क्वचिद्व्रजन्तमालोक्य विरहादिव रोदिति ॥७६॥

इसकी अवस्थाका क्या कहना? अत्यधिक प्रेम के कारण यदिइसे कहीं पर अचानक से भगवान् के दर्शन हो जाय, तो वह जोरों से हँस पड़ता है। तथा जिस जगह पर यह होता है, वहाँ से यदि भगवान् चले जाय, तो उनके वियोग में रोने भी लगता है ॥७६॥

आनन्दान्नृत्यति क्वापि क्वापि सम्भाषतेऽमुना ।
साष्टाङ्गं वन्दते क्वापि क्वचित्तूष्णीं च तिष्ठति ॥७७॥

कभी इसे भगवान् का आभास हो जाय तो आनंद से झूमने लगता है । कभी भगवान् के साथ संवाद करता रहता है । कभी उनको साष्टांग दंडवत् प्रणाम करता है, तो कभी उनके सामने मौन ही खड़ा रहता है ॥७७॥

अपराधान् क्षमस्वेति क्वापि प्रार्थयते हरिम् ।
स्नेहेन विवशः क्वापि स च गायति निस्त्रपः ॥७८॥

कभी अपने किये का पछ्तावा होने पर भगवान् श्रीहरि से अपने अपराधों की क्षमायाचना करते हुए गिड़गिड़ाता है। कभी लज्जा का त्याग कर भगवान् में रहे स्नेह से विवश होकर उनके गुणों का कीर्तन भी करता है ॥७८॥

हरे ! नारायण ! स्वामिन् ! कृष्ण ! गोविन्द ! माधव! ।
इत्याद्याः कीर्तयत्युच्चैरभिधाः क्वापि सत्पतेः ॥७९॥

और तो और, यह निष्कामी भक्त हे हरि !, हे नारायण!, हे स्वामिन् ! हे कृष्ण! हे गोविन्द! हे माधव! इस प्रकार से संबोधन कर संतों के स्वामी भगवान् श्रीकृष्ण का बड़े जोरों से संकीर्तन भी करता है ॥७९॥

इत्यादिभिर्बहुविधैश्चिह्नैः स उपलक्षितः ।
पुनाति भुवनं भक्तः स्वपादरजसाऽखिलम् ॥८०॥

जगत् से निराली जिसकी रीति है, ऐसा वह प्रेमी भक्त, इस प्रकार के अनेकों प्रेमलक्षणों से संपन्न होकर अपनी चरणधूली से अखिल भुवन को पावन करता है ॥८०॥

अनायासेनैव मातर्भवत्यस्य हरेस्तनौ ।
निरोधः प्राणमनसोः प्रेमभक्तस्य निश्चितम् ॥८१॥

ऐसे प्रेमी भक्त को भगवान की मूर्ति में मन को जोड़ने के लिए अधिक प्रयास नहीं करना पड़ता। वह तो बड़ी सुगमता से अपने मनोवृत्ति को भगवत्स्वरूप में जोड़ देता है ॥८१॥

प्रारब्धान्ते विहायासौ पुमान्वा स्त्री कलेवरम्।
गुणान्मायामयांस्त्रींश्च हित्वा भवति निर्गुणः ॥८२॥

ऐसा भक्त,पुरुष हो या स्त्री हो, यह अंतसमय में इस शरीर को छोड़कर माया के तीनों गुणों से परे निर्गुणस्थिति को प्राप्त कर लेता है ॥८२॥

दिव्यां तनुं ब्रह्मरूपां प्राप्य कृष्णेच्छया स च ।
दिव्यं विमानमारुह्य स्वेष्टं तद्धाम याति वै ॥८३॥

तदुपरांत भगवान् की इच्छा से दिव्य ब्रह्ममय देह को प्राप्त करता है, फिर दिव्य विमान में बैठ़कर इसे प्रिय ऐसे भगवद्धाम की ओर गति करता है ॥८३॥

गोलोके सोऽक्षरे धाम्नि वैकुण्ठे वापि भक्तराट् ।
कृष्णस्य वर्ततेऽखण्डं सेवायां सर्ववन्दितः॥८४॥

जब यह प्रेमी भक्त गोलोक, वैकुंठ तथा अक्षरधाम में जाता है, तब उन धामों के सभी मुक्तात्मा इस भक्त को वंदन करते हैं ।और यह भक्त वहीं भगवान् की सेवामें अखंड़ितरूप से रहने लगता है ॥८४॥

तेन कृष्णेन दत्तानि ह्यनन्तान्यक्षयाणि च ।
तत्र दिव्यानि सौख्यानि प्राप्नोति जननि ! ध्रुवम् ॥८५॥

हे जननि ! वहाँ भगवान श्रीकृष्ण ने अर्पण किये हुए सारे अनंत शाश्वत सुखों को यह भक्त निश्चितरूप से प्राप्त करता है ॥८५॥

अध्यात्मशास्त्रमिति ते मया प्रोक्तमशेषतः ।
एतावदेव जीवानां मतं निःश्रेयसाय मे ॥८६॥

इस प्रकार समस्त अध्यात्मशास्त्र का रहस्य मैंने आपको बतलाया । जहाँ तक मैं समझता हूँ, वहाँ तक, जिस मनुष्य को अपने कल्याण की कामना हो, उसके लिए इतनी सी बात पर्याप्त है । अर्थात् जिसे इस भवसागर से पार जाना हो, उसे इतना ही करना उचित है ॥८६॥

वेदानां पञ्चरात्रस्य रहस्यं साङ्ख्ययोगयोः ।
धर्मशास्त्रस्य चाप्येतद्धिस्पष्टमुदितं मया ॥८७॥

क्योंकि चारों वेद, पंचरात्र शास्त्र, सांख्यशास्त्र, योगशास्त्र तथा धर्मशास्त्र, इन सारे शास्त्रों का सार आपको जिस प्रकार से समझ में आए, उसी प्रकार से मैंने बतलाया है ॥८७॥

तस्मादेतद्भवत्यापि श्रेयसे धार्यमात्मनि ।
तेन मुक्ता सर्वकष्टात्प्राप्स्यसे परमं सुखम् ॥८८॥

अतः हे माता ! आप भी अपने कल्याण के लिए इस रहस्य को अपने आत्मा में धारण कीजिए । और जब भी आप इसका चिंतन करेगी, तब इसके द्वारा आपकी सारी सांसारिक पीड़ाएँ दूर हो जायेगी और आप परमसुख को प्राप्त कर लेगी ॥८८॥

एतद्रहस्यं परमं यः श्रोष्यति पठिष्यति ।
भविष्यति तयोः कृष्णे भक्तिश्च सुखमीप्सितम् ॥८९॥

इस परम रहस्य को यदि कोई मनुष्य श्रवण अथवा पाठ करेगा, तो उसे भगवान् श्रीकृष्ण की भक्ति निश्चितरूप से प्राप्त होगी, साथ में मनचाहे सुखों को भी वह प्राप्त करेगा ॥८९॥

सुव्रत उवाच -

रहस्यमिति पुत्रेण गीतं माता निशम्य सा ।
प्रसन्नहृदयाऽत्यन्तं प्रोचे निःसंशया सती ॥९०॥

सुव्रतमुनि ने कहा, हे राजा ! अपने पुत्र के रूप में रहे बालस्वरूप श्रीहरिकृष्ण ने इस प्रकार सभी शास्त्रों के रहस्य को जब माता भक्तिदेवी को सुनाया । तब उनके हृदय में बड़ी प्रसन्नता हुई और इस रहस्य के श्रवण से माता भक्तिदेवी निःसंशय होकर इस प्रकार अपने पुत्र को कहने लगी ॥९०॥

प्रेमवत्युवाच -

स्वधर्मज्ञानवैराग्यैरुपेता नवलक्षणा ।
भक्तिः कृष्णे त्वया प्रोक्ता नृणां श्रेयस्करी हरे ! ॥९१॥
स तु कृष्णस्त्वमेवासि हरिनामाऽत्र साम्प्रतम् ।
निश्चयेनेति जानामि त्वद्वाक्यैर्नष्टसंशया ॥९२॥

माता प्रेमवती ने कहा, हे हरे ! धर्म, ज्ञान तथा वैराग्ययुक्त जिस भगवान् श्रीकृष्ण की नवधा भक्ति करने का अभी आपने विधान किया, वे तो आप स्वयं हो । अभी "**हरि**" के नाम से इस लोकमें प्रसिद्ध हो। ऐसा मैं भलीभाँति जानती

हूँ । तभी तो आपके इन वचनामृतों से मेरी सारी शंकाएँ दूर हो गई है ।।९१-९२।।

त्वय्येव संयोज्य मनो मायाकालसमुद्भवात् ।
समग्रकष्टान्मुक्तास्मि यामि धामाद्य ते परम् ।।९३।।

इतना ही नहीं, पर नि:संदेह हुआ मेरा मन अब शुद्ध होकर आपके स्वरूप में जुड़ गया है । इसलिए काल, माया के प्रभाव से उत्पन्न हुए सारे भय से अब मैं मुक्त हो चुकी हूँ और आपके धाम की ओर गति कर रही हूँ ।।९३।।

सुव्रत उवाच -

इत्युक्त्वा सा तमेवान्तर्हरिं नारायणं प्रभुम् ।
दध्यौ विशुद्धमनसा तेनाभूद्देहविस्मृतिः ।।९४।।

सुव्रतमुनि ने कहा, हे राजा ! इस प्रकार कहते हुए माता भक्तिदेवी सर्वसमर्थ श्रीनारायण ऐसे भगवान् श्रीहरि का अपने अंत:करण में विशुद्धमन से ध्यान करने लगी । माता ने जैसे ही प्रभु का ध्यान लगाया तभी उनको अपने इस शरीर की तत्काल विस्मृति हो गई ।।९४।।

गीतामेतां हि साक्षाद्धरिमुखकमलान्निःसृतां वेदसारं,
कृष्णं संपूज्य भक्त्या प्रतिदिनमखिलामत्र वाध्यायमेकम् ।
नानाकामाभिलाषी ननु धरणिपते ! यः पठेद्वा निशाम्येद्-
यायात्स्वेष्टं स सौख्यं त्वरितमथ जनः कृष्णभक्तिं निराशीः ।।९५।।

हे पृथ्वीपति राजा! यह गीता साक्षात् श्रीहरि के मुखकमल से निकली हुई समस्त वेदों का सार है । जिस

किसी के मनमें नाना प्रकार की कामनाएँ हो, वह भगवान श्रीकृष्ण का पूजन कर यदि इस हरिगीता का पाठ करेगा अथवा केवल एक ही अध्याय का पाठ करेगा, तो उसकी सारी मन:कामनाएँ तत्काल पूरी होगी ।और जो इस गीता का निष्कामभाव से पठन एवं श्रवण करेगा, उसे भगवान् श्रीकृष्ण की भक्ति भी अवश्य प्राप्त होगी ।।९५।।

इति श्रीसत्सङ्गिजीवने नारायणचरित्रे धर्मशास्त्रे प्रथमप्रकरणे हरिगीतायां भक्तिस्वरूपलक्षणनिरूपणनामा पंचमोऽध्यायः ।।५।।

इस प्रकार श्रीनारायणचरित्र और धर्मशास्त्ररूप श्रीसत्संगिजीवन के प्रथम प्रकरणान्तर्गत श्रीहरिगीता में भक्ति के लक्षणों का निरूपण करके पाँचवा अध्याय समाप्त हुआ ।।५।।

।। श्रीहरिगीता समाप्ता ।।

શ્રી સ્વામિનારાયણ મંદિર વડતાલધામ દ્વારા પ્રકાશિત ગ્રંથસૂચિ

૧. વચનામૃત
૨. Vachnamrut (English)
૩. वचनामृत (मराठी)
૪. वचनामृत (हिन्दी)
૫. વચનામૃત ગુટકો
૬. સત્સંગિજીવન - (સંસ્કૃત-ગુજરાતી) (ભાગ ૧ થી ૫)
૭. શ્રી સત્સંગિજીવન પત્રાત્મક હેતુટીકા (સંસ્કૃત)
૮. વચનામૃત ભૂમિકા
૯. શિક્ષાપત્રી પંચરત્ન
૧૦. કીર્તનધારા
૧૧. ઈશાદીદશોપનિષદ ભાષ્યમ્ (સંસ્કૃત)
૧૨. ભક્તચિંતામણિ
૧૩. ભક્તચિંતામણિ ગુટકો
૧૪. હરિલીલામૃત (ભાગ ૧ થી ૪)
૧૫. શિક્ષાપત્રી (સંસ્કૃત, ગુજરાતી)
૧૬. શિક્ષાપત્રી (સંસ્કૃત, હિન્દી, અંગ્રેજી)
૧૭. શિક્ષાપત્રી ગુટકો (સંસ્કૃત-અંગ્રેજી)
૧૮. શિક્ષાપત્રી નિત્ય નિયમ
૧૯. મુક્તાનંદ કાવ્ય (ભાગ-૧,૨)
૨૦. નિષ્કુળાનંદ કાવ્ય
૨૧. મંજુકેશાનંદ કાવ્ય
૨૨. વાસુદેવ મહાત્મ્ય
૨૩. શાન્ડીલ્યસૂત્ર ભાષ્યમ્
૨૪. ભગવદ્ગીતા ભાષ્યમ્
૨૫. શ્રીહરિદિગ્વિજય
૨૬. અક્ષરાનંદ સ્વામીની વાતો
૨૭. ભૂમાનંદ સ્વામાની વાતો
૨૮. અદ્ભુતાનંદ સ્વામીની વાતો
૨૯. Ghanshyam Balcharitra (English)
૩૦. વડતાલ દર્શન
૩૧. નિત્ય ભગવદારાધના
૩૨. ભગવદ્ ગીતા (ગુજરાતી મૂલમાત્ર)
૩૩. શ્રીમદ્ ભાગવત્ (પત્રાત્મક) ભક્તમનોરંજનની ટીકા
૩૪. આદિનારાયણ કથા તથા દિવ્ય મહાપૂજા
૩૫. અર્ચાવતાર સ્તોત્ર (કાર્ડ)
૩૬. સત્સંગિજીવન સાગરમંથન
૩૭. કીર્તન કૌસ્તુભમાળા
૩૮. વચનામૃત સંપાદક ચાર સદ્ગુરુ જીવનદર્શન
૩૯. આપણું વડતાલધામ (ગુજરાતી)
૪૦. अपना वडतालधाम (हिन्दी)
૪૧. Our Vadtaldham (English)
૪૨. વેણ થકી અમૃત ઘોળ્યા
૪૩. મુક્તચિંતામણી
૪૪. મંડાણ
૪૫. મનોમંથન
૪૬. ભક્તચિંતામણિ અંતર્ગત ઐશ્વર્યદર્શન
૪૭. સદ્ગુરુ સ્વામી શ્રી નારાયણદાસજી
૪૮. સ્વામિનારાયણ સંપ્રદાયના પ્રેરણાદાયી લેખો
૪૯. નિષ્કુળાનંદ સ્વામી
૫૦. કીર્તન ગંગોત્રી
૫૧. સુબોધ કથાસાર
૫૨. સૈદ્ધાંતિક વિચારરત્નો
૫૩. વૈદિક સિદ્ધાંત અને ગુરુપરંપરા
૫૪. વચનામૃત દર્શન
૫૫. આધ્યાત્મિક તત્ત્વાખ્યાન

श्री लक्ष्मीनारायण देव

वडताल धाम

द्विशताब्दी २००

सवंत् १८८१ से २०८१

महोत्सव

७ से १५ नवे.- २०२४

-: પ્રકાશક :-

श्री वड़ताल मेनेजींग ट्रस्टी बोर्ड की ओर से

मुख्य कोठारीश्री डो. शास्त्री संतवल्लभदास (Ph.D., D.Litt)

श्रीस्वामिनारायण मन्दिर, संस्थान–वड़ताल

पीन : ३८७३७५ (गुजरात)

(0268) 2589728, 2589776 vadtaldhamvikas@gmail.com www.vadtalmandir.org